❋ श्रीजानकीवल्लभ दुलहा भगवान् की जय ❋

नामानुरागियों से-

निखिलश्रुतिमौलि रत्नमाला-

द्युतिनीराजित पादपङ्कजान्त।

अयि! मुक्ति कुलैक रुपास्यमानं-

परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि॥

जय हो, अप्रतिम प्रभावशाली भगवान् के दिव्य नाम का, जिसका निरन्तर गुणगान गाते वेद-शास्त्र-पुराण-सन्त और शेष शारदा कभी नहीं थकते। जिसका उच्चारण मात्रही भवतारक सिद्ध हो चुका है। उस महामहिम भगवन्नाम के विषय में कुछ कहने का मुझे अधिकार ही क्या है ? मैं न तो नाम जापक सन्त ही हूं और न तत्त्ववेत्ता विद्वान्! फिर भी जो कुछ भी कहने का साहस किया है वह सन्त-वाणी की प्रतिध्वनिमात्र ही है। सन्तजन और श्रीसद्गुरु भगवान् (आचार्यदेव जब कभी परस्पर भगवच्चर्चा करते थे मैं ध्यान पूर्वक सुनकर खर्रा लिख लेता। यह उसी सत्संग की प्रसादी है। यदि जनसमाज को यह सन्त प्रसादी रुचिकर स्त्र-तो "स्यात्कोटिजन्मार्जितपापनाशः" के साथ आत्मकल्याण

निश्चित ही है। इसके लिखने में श्रीसम्प्रदाय के समर्थ विद्वान् भाष्यकार श्री स्वामी हरिदासजी महाराज के 'नामापराध-भाष्य' से सहायता मिली है, एतदर्थ उनके भाष्य का दर्शन कराने वाले श्रीअवधशरणजी महाराज श्रीजानकी घाट का कृतज्ञता पूर्वक आभार मानता हूँ। पाठकों को यह सन्तों की प्रसादी प्रिय लगी तो और भी नानाविध सन्त प्रसादी का समयानुसार रसास्वादन कराया जायगा।

श्रीरामानन्द-आश्रम
जनकपुर धाम
जन्माष्टमी, सं० १९९७

नाम जापकों का कृपाकांक्षी:-
अवधकिशोरदास
'श्रीवैष्णव'

❀ जयतु श्रीराघवेन्द्रः ❀

* आशीर्वाद *

जयनामधेय मुनिबृन्द गेय-

जनरञ्जनाय परमाक्षराकृते ।

त्वमनादरादपि मनागुदीरितं-

निखिलोग्रताप पटलीं विलुम्पति ॥

मुनिजनों के परमप्रिय गेय, भक्तजनों के मनोरञ्जनार्थ परम दिव्य अक्षरों की आकृति धारण करने वाले हे श्रीभगवन्नाम ! आपकी सर्वदा जय हो ! आपका अनादर से भी जरा सा उच्चारण करने पर समस्त उग्र सन्तापों की पंक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं ।'

भगवन्नाम के अप्रतिहत प्रताप से प्रत्येक धर्मप्रिय मनुष्य सुपरिचित हैं । वेद और शास्त्र कथित भगवन्नाम के जयघोष को महात्माओं ने सन्तबाणी द्वारा लाऊडस्पीकर (ध्वनिविस्तारक यंत्र) की भाँति जनता के कानों तक पहुँचाने में कोई कसर नहीं रखी है । फिर भी उस अनन्तशक्तिसम्पन्न भगवन्नाम का भली भाँति आश्रय न लेकर नरक का मार्ग प्रशस्त करने वालों की आज कमी नहीं है, इसीलिये शास्त्रकारों को कहना पड़ता है कि—

यस्य स्मरणमात्रेण पापिनोऽपि परांगतिम् ।
तस्य माहात्म्यविज्ञानाज्जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥
तारकं रामनामेदं वर्तमानेऽपि सर्वदा ।
भवाब्धौ पतिताजीवाः किमाश्चर्यमतः परम् ॥
(नामापराधभाष्य)

'जिसके स्मरण मात्र से भी पापी जीव परमगति पाते हैं उसके माहात्म्य को जानकर मनुष्य निश्चय ही जीवन्मुक्त हो सकता है, ऐसा तारक श्रीरामनाम सर्वदा सर्वत्र सर्वसुलभ रहते हुये भी जीव भवसागर में गोते लगाते हैं इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य होगा ?'

सुन्दर औषध रहते हुये भी रोगियों का रोग मुक्त न होना सिद्ध करता है कि या तो रोगी आलस्यवश दवा नहीं खाता है अथवा तो औषध सेवन करने पर भी कुपथ्य कर लेता है, उसी प्रकार भगवन्नाम रहते हुये भी लोगों का नरक जाना सिद्ध करता है कि जन समाज एकनिष्ठ होकर भग--वन्नाम का जप नहीं करता अथवा तो नाम जपते हुए भी अप-राध करने की आदत नहीं छोड़ता। महात्माओं का कथन है कि-

हरि नुं नाम रसायन सेवे, पण जो पथ्य पलाय नहीं।
नाम रटण नुं फल नव पामे ने भवरोग टलाय नहीं ॥
—श्रीहरिदासजी

'भगवन्नाम रूपी श्रेष्ठ रसायन सेवन करने पर भी यदि सांसारिक विषय सेवनरूपी कुपथ्य का परित्याग न करे तो

नाम जप का यथार्थ फल नहीं मिलता और भवरोग नहीं मिटता।' महात्मा श्रीअग्रस्वामी जी का कथन है कि:—

मोसों प्रीति वैर भक्तनसों, मेरो नाम निरंतर लैहैं।
'अग्रदास' भागौत वदत यों, मोहूँ सुमिरत यमपुर जैहैं।:

आजकल भक्तों की प्रायः यही मनोदशा है। वे भगवान् से मिलना भी चाहते हैं और सांसारिक आसक्ति भी छोड़ना नहीं चाहते। भला ये दोनों काम एक ही साथ कैसे हो सकते हैं? हार्दिक मलिनता परित्याग कर अनन्य भगवन्नाम निष्ठ हो जाने पर तो—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता, ९।२२)

इस भगवत्प्रतिज्ञानुसार भक्तों को लोक परलोक के समस्त सुख साधन 'आम के आम और गुठली के दाम" की भाँति परम सुलभ हो जाते हैं। परन्तु ऐसा न करके "इतो-भ्रष्टस्ततोभ्रष्टः" मनुष्य भी भक्त होने का दावा करते हैं तो वह झूठा है। कवि निष्कुलानन्दजी ने ठीक ही कहा है कि—

पलमां जोगी ने भोगी पलमां, पलमां गृही ने त्यागी।
'निष्कुलानंद' ए नरने समजो, वणसमज्यो वैरागी॥
— आश्रम भजनावली १२२

'जो पलभर में योगी और भोगी बनता है, पल में गृही और त्यागी बनता है वह अव्यवस्थित चित्त मनुष्य बिना

समझ का वैरागी है, ऐसे लोगों की प्रसन्नता भी भयावह है। "अव्यवस्थित चित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः" कविवर दयाराम ने भी इस बात को बड़ी खूबी से समझाई है—

वैष्णव नथी थयो रे शीद तूं अभिमान मां घूमे।
हरिजन नथी थयो रे शीद तूं० ॥टेक॥

हरिजन जोई हैडुं न हरखे, द्रवे न हरिगुण गातां।
काम-धाम-चटकी-नथी फटकी, क्रोधे लोचन रातां॥
तुज संगे कोई वैष्णव थाये तो तुं वैष्णव साचो।
तारा संग नो रंग न लागे, त्यां सुधी तुं काचो॥

—आश्रम भजनावली ११६

'अर्थात् अभी तक तू वैष्णव नहीं बना है, व्यर्थ घमण्ड क्यों करता है? प्रभु के प्यारे भक्तों को देखकर तेरा हृदय प्रेम से नहीं भर जाता और भगवान् के गुणगान सुनकर द्रवीभूत भी नहीं होता। काम-धाम और ईर्ष्या नहीं छूटी, क्रोध से आँखें लाल हो जाती है। तेरे संग का रंग दूसरों को नहीं लगता तब तक तू कच्चा ही है, जब तेरा संग पाकर दूसरे भी भगवद्भक्त बन जायँ तभी तू सच्चा वैष्णव हो सकेगा।' सच्चे नाम जापक सन्त का लक्षण भक्तवर श्रीनरसिंह मेहता ने कहा है—

मोह माया व्यापे नहीं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
राम नाम शुं ताली रे लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे॥

'जिसको मोह माया नहीं लगी और जिसके मनमें संसार के प्रति दृढ़ वैराग्य है, ऐसे श्रीरामनाम से लगन लगाने वाले भक्त के शरीर में समस्त तीर्थ निवास करते हैं ।' परन्तु आज ऐसे कितने भक्त हैं ? वैरागी समाज में भी इने गिने ही पायँगे। तब हम कैसे कह सकते हैं कि भगवन्नाम जप करने पर भी हमें कुछ लाभ न हुआ ? अंधेरी कोठरी मं बैठकर सूर्य को कोसते रहना अज्ञानता मात्र ही हो सकता है । विष और अमृत को एक साथ खाने पर तो अमृत भी ज़हरीला मालूम होता है, हाँ हलाहल पान करके भी अमृत खा लेने पर अमरता और तृप्ति अवश्य होती है और फिर जहर भी अपना असर नहीं पहुंचा सकता । उसी प्रकार पाप करते हुए भगवन्नाम का जप करने पर उसका शास्त्रीयफल तथा यथार्थ आनन्द नहीं मिल सकता परन्तु पाप बन जाने पर उसके प्रायश्चित्त स्वरूप भगवन्नाम जप करने पर पाप भी छूटेगा और भगवन्नाम रसास्वादन का आनन्द भी मिलेगा । फिर भगवन्नाम जापक को पाप भी नहीं छू सकता । विषयों की आशक्ति को मधुर मान लेने वाले पामरों को भगवन्नाम के दिव्य माधुर्य का सुख मिलना दुर्लभ ही है। तभी तो श्रीगोस्वामीजी जैसे नामनिष्ठ महात्माओं को कहना पड़ता है कि—

तुलसी जौलौं जगतकी, सुधा माधुरी मीठ।
तौलौं सुधा सहस्र सम, रामभक्ति सुठि सीठ ॥

जहां राम तहां काम नहिं, जहां काम नहि राम ।
तुलसी कबहुँक रहि सकत, रवि रजनी इक ठाम ॥

आजकल के भक्त थोड़ा सा कष्ट होने पर 'इतने दिनका भजन कुछ भी काम न आया, सब झूठ-मूठ ढकोसला है' कहकर ईश्वर के दुश्मन बन बैठते हैं। परन्तु उन बेचारों को पता नहीं है कि –

महा कष्ट पाम्या बिना कृष्ण कोने मल्या,
चारे जुगोना जुओ साधु सोधी ।
व्हाल वैष्णव विषे विरल ने होय छे,
बहु पीडनाराज भक्ति विरोधी ॥

(कवि दयाराम, आ० भ० ११८)

'महान् संकटों को भोगे बिना भगवान् सहज में किसको मिल गये हैं। चारों युगों के सन्तों की आत्मकथायें पढ़ जाइये। भक्तों के प्रति प्रेम रखने वाले तो कोई विरले ही होते हैं ज्यादा तो भक्ति विरोधी और भक्तों को दुःख देने वाले ही मिलेंगे।' महात्मा श्रीप्रीतमदासजी इसीलिये कहते हैं कि –

हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायर नुं काम जोने ।
परथम पहेलां मस्तक मूकी, वलतां लेवुं नाम जोने ॥

'प्रभु का प्रेममार्ग शूरवीरों का है, यहाँ कायरों का काम नहीं है, जो सर्व प्रथम अपना मस्तक समर्पण करदे वही इस पथ पर चलने का नाम ले सकता है।'

रसिकन सों इतनों जब जानै, तब ही रसको मज़ा पटेगी ॥

—श्रीकाष्ठजिह्व देवस्वामी

रसना मेरी लाडिली लेहु लाडिलो नाम ।

महारानी श्री जानकी, महाराजा श्रीराम ॥

—श्रीबलदुदासजी

तुलसी रसना तो भली, रटै रैन दिन नाम ।

नहिं तो काटि निकासिये, मुख में भलो न चाम ॥

इस लिये हमारा कर्तव्य है कि—

हरिजन होय तेने हेत घणुं राखवुं—

निज नाम ने ग्रही निर्मान रहेवुं ।

त्रिविधना ताप ने जाप जरणा करी

परिहरी पाप रामनाम लेवुं ॥

'जो भगवद्भक्त हैं उनसे अत्यन्त प्रेम रखकर भगवन्नाम का जप करना चाहिये। घमण्ड का त्याग कर त्रिविध तापों को नामजप में जला देना चाहिये और पापों का परित्याग कर श्रीरामनाम रटना चाहिये।' यही सब शास्त्र और सन्तों का दृढ़ सिद्धान्त है। इसी बात को समझाने के लिए यह पुस्तक लिखा गया है।

सरस, सरल और सुन्दर 'संकीर्तन-साधना' के मार्ग को प्रशस्त करने की कामना से श्रीनारदजी और श्रीसनत्कुमार ऋषि का जो संवाद हुआ है उसीका यह विशद व्याख्यान है। पद्मपुराण के कलिधर्म निर्णय प्रकरण में २५ श्लोकों का यह प्रसंग है। उसकी व्याख्या संस्कृत में 'श्रीनामापराध भाष्य'

सके हैं। श्रीरामनाम की मस्ती में अलमस्त रहने वाले प्रेमी सन्त ही 'प्रीतमदास' के स्वामी की लीलाओं को रात दिन देखते हैं।' कबीरजी भी कुछ ऐसा ही कहते हैं—

'कबिरा' खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ,
जो घर फूँके आपनो, चले हमारे साथ॥

कितना सुन्दर वर्णन है, थोड़ा सा आज-कल के भक्तों से मिलान तो कर देखिये! आज तो भगवान् के नाम लेने में भी आलस्य लगता है, तभी तो सन्तों ने कहा है—

जीभलडी रे हरिगुण गातां आटलुं आलस क्यां थी रे।
लबरी करतां नवराई न मले, बोली उठे मुखमांथी रे॥
परनिंदा करवाने पूरी, शूरी षट्रस खावा रे।
झगडो करवा झूझे पहेली, कायर हरिगुण गावा रे॥

'अरी ऐ जीभ! तुझे भगवान् के गुण गाने में इतना आलस्य क्यों लगता है? बकवाद करने से तो तुझे फुरसत ही नहीं मिलती, बिना बोलाये मुख में से झट बोल उठती है। दूसरों की निन्दा करने में पूरी है, षट्रस भोजन करने में शूरवीर है, झगड़ा करने को सबसे पहले जूझती है, फिर हरि गुण गाने में ही कायर क्यों बन गई?' तभी तो महात्मा तुझे उपदेश देते हैं कि—

जीह चटोरी चाट चटेगी, काहे को राम को नाम रटेगी।
श्याम महारस जिसके आगे 'देव' सुधा हूँ दूर छटेगी।

❁ श्रीराघवेन्द्रो-विजयते ❁

❁ श्रीमते रामानन्दाचार्यायनमः ❁

दश-नामापराध

❁ मंगलाचरणम् ❁

यद्दिव्यनामस्मरतां संसारो गोष्पदायते ।
स्वाननन्य भक्तिर्भवति तद्राम पदमाश्रये ॥

—कलिसन्तरणोपनिषद्

नाम संकीर्तनं यस्य सर्व पाप प्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि परमं हरिम् ॥

(श्रीमद्भाग० १२ । १३ । २३)

(नाममाहात्म्य और नामापराधों का उपक्रम)

कलियुग की जय हो ! जिसके शासनकाल में भक्तों को भगवन्नाम जैसे सरल और सुलभ साधन का अनन्य आश्रय मिला । इस एक महान् गुणके कारण ही महात्मा लोग इसके अनन्त अवगुणों को भूल जाते हैं । महाराज परीक्षितजी से परमहंस श्रीशुकदेवजी ने इसीलिये कहा है कि—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
(भाग० १२ । ३ । ५१)

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥
(भाग० ११ । ५ । ३६)

"हे राजन् ! इस दोषनिधि कलियुग में एक महान् गुण है कि भगवान् के संकीर्तनमात्र से ही मनुष्य परमपद (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। इसलिये गुणज्ञ और सारग्राही सन्त कलियुग की प्रसंसा करते हैं। क्योंकि इस युगमें केवल भगवन्नाम संकीर्तन करने से ही समस्त स्वार्थ परमार्थ सहज ही में सिद्ध हो जाते हैं।" ब्रह्मपुराण का भी कथन है कि—

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥
(अ० ६७ । १६६)

"सत्युग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में पूजन से जो फल प्राप्त होता है वही फल कलियुग में भगवन्नाम संकीर्तन से मिलता है।" कलियुग के पापी प्राणियों का उद्धार करने मे अन्य कोई साधन समर्थ ही नहीं है। क्योंकि—

किं विद्यया किं तपसा किं ज्ञानेन श्रुतेन किम् ।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम् ॥

"विद्या-तप-ज्ञान-स्वाध्याय-शास्त्रश्रवण बैराग्य और मौन उसका क्या भला कर सकते हैं जिसका मन स्त्रियों ने हरण कर लिया है।' ऐसी अवस्था में हम विषयासक्त पामरों का भला होना कठिन ही है। इसीलिये कलियुग के जीवों का एक मात्र आधार श्रीरामनाम माना गया है। शास्त्रकारों का कथन है कि—

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदाजपन्मुक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौयुगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलुनाधिकारः॥

'राम' इन दो अक्षरों का आदर पूर्वक सर्वदा जप करने से ही मनुष्य को मोक्ष मिलता है। कलियुग के कलुषित हृदय वाले मनुष्यों को अन्य किसी भी धर्म का अधिकार ही नहीं है। महापापों का मद तोड़ने में श्रीरामनाम ही परम समर्थ है—

तावदेव मदस्तेषां महापातकदन्तिनाम्।
यावन्न श्रूयते राम नाम पंचानन ध्वनिः॥

'महापातकरूपी मदोन्मत्त हाथियों का मद तभी तक रहता है जब तक श्रीरामनाम रूपी सिंह की गर्जना नहीं सुन पड़ती।'

द्विजो वा राक्षसो वापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा।
रामरामेति यो वक्ति समुक्तो नात्रसंशयः॥

'द्विज-राक्षस-पापी अथवा धार्मिक जो कोई भी श्रीराम-नाम का उच्चारण करता है वह मुक्त ही है इसमें कुछ भी

संशय नहीं है।' ऐसे महामहिम भगवन्नाम संकीर्तन का विधान श्रीनारदजी से श्री सनत्कुमार महर्षि ने कहा है। पद्मपुराण के स्वर्ग खण्ड में कलिधर्म निर्णय प्रकरण में यह प्रसंग है। श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई के छपे पद्मपुराण में ब्रह्म-खंड अध्याय २५ में यह प्रसंग है। पहले श्रीशौनक ऋषि श्री-सूतजी से पूछते हैं कि—

नामोच्चारण माहात्म्यं श्रूयते महदद्भुतम्।
यदुच्चारणमात्रेण नरो याति परं पदम् ॥१॥
तद्वदस्वाधुना सूत ! विधानं नामकीर्तने।

हे सूत! नाम के उच्चारण का महान् अद्भुत माहात्म्य सुनते हैं जिसके उच्चारणमात्र से मनुष्य परमपद पाता है। उसके संकीर्तन की विधि कृपा करके आज हमसे कहें—

शृणु शौनक! वक्ष्यामि संवादं मोक्षसाधनम् ॥२॥
नारदः पृष्टवान्पूर्वं कुमारं तद्वदामि ते ॥
एकदा यमुनातीरे निविष्टं शान्तमानसम् ॥३।
सनत्कुमारं प्रप्रच्छ नारदो रचिताञ्जलिः ॥
यो सौ भगवता प्रोक्तो धर्म व्यतिकरो नृणाम् ।४॥
कथं तस्य विनाशः स्यादुच्यतां भगवन्प्रियः ॥

हे शौनक ! सुनो, मोक्ष का साधन भूत संवाद जो पहले श्रीनारदजी ने सनत्कुमार से पूछा था वह प्रसंग मैं तुम से कहता हूँ। एक समय यमुना नदी के तट पर शान्तचित्त

बैठे हुए श्रीसनत्कुमार से नारदजी हाथ जोड़कर पूछने लगे। हे भगवत्प्रिय सन्त! आपने जो धर्म का इस प्रकार व्यतिक्रम (उलट पलट होना) कहा है उसका विनाश कैसे हो सकता है। कृपा करके कहैं। श्रीनारदजी का प्रश्न सुनकर महर्षि सनत्कुमार बोले—

शृणु नारद श्रीराम प्रिय श्रीरामधर्मवित् ।
यत्पृष्टं लोकनिर्मुक्ति कारणं तमसः परम् ।५॥
सर्वाचार विवर्जिता शठधियः व्रात्या जगद्वंचकाः—
दम्भाहंकृति पान पैशुनपरा पापान्त्यजाः निष्ठुराः ।
ये चान्ये धन दार पुत्र निरता सर्वाधमास्तेऽपि हि—
श्रीरामस्यपदारविन्द शरणा शुद्धा भवन्ति द्विज ॥६॥

हेनारद! आप श्रीभागवत-धर्म को जानने वाले और भगवत्प्रिय हैं। अतएव आपने सांसारिक मुक्ति का कारण जो दिव्य ज्ञान पूछा है उसका उत्तर सुनिये-जो समस्त सदाचारों से भ्रष्ट हैं, शठबुद्धि वाले, वैदिक संस्कारों से हीन और संसार को ठगने वाले हैं। दंभ और अहंकार में मतवाले मद्यपान करने वाले, पिशुनता परायण, पापी-निर्दयी, चाण्डाल, पराया धन स्त्री और पुत्र हरण करनेवाले, महापापी और अधम हैं वे भी प्रभु श्रीराघव के शरण जाकर परम शुद्ध हो जाते हैं। परन्तु—

तमपिदेव वरं करुणाकरं स्थावर जंगममुक्तिकरं परम् ।
अभिचरन्त्यपराधपरा नरा य इह तानवति ध्रुवनाम हि ॥७॥

सर्वापराध कृदपि मुच्यते हरि संश्रयः ।
हरेरप्यपराधान् यः कुर्याद्विपद पांशुलः ॥ ८ ॥
नामाश्रयः कदाचित्स्यात्तरत्येव स नामतः ।
नाम्नोऽपि सर्व सुहृदो ह्यपराधात्पतत्यधः ॥ ६ ॥

'ऐसे शरणागत वत्सल दयालु देवों में परम श्रेष्ठ स्थावर जंगम सभी जीवों को मुक्ति देने वाले करुणामय प्रभुका भी जो अपराध कर बैठते हैं उनका संरक्षण भगवन्नाम ही करता है। यहां "संस्थानस्थानदो ध्रुवः" इस वाक्यानुसार ध्रुव शब्द भगवन्नाम वाचक है । समस्त सामान्य अपराध करने वाले भगवच्छरण जाकर मुक्त होते हैं परन्तु भगवदपराध करने वालों को विपत्तिजाल में फँसना पड़ता है । ऐसे भगवान् के अपराधो महापापी भी यदि भगवन्नाम का आश्रय लें तो नाम के प्रताप से तर जाते हैं परन्तु सर्व सुहृद परम हितकारी भगवन्नाम का भी अपराध करने वालों का अधः पात निश्चित है।'

भावार्थ यह है कि समस्त पापों के करने वाले भी भगवच्छरण जाने पर "विप्र कोटि वध लागे जाहू । आये शरण तजौं नहिं ताहू ॥ जो सभीत आवा शरणाई । रखिहौं ताहि प्राण की नाई ॥" "अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम" "अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिस्यामि मा शुचः" इत्यादि प्रतिज्ञानुसार प्रभु शरणागत भक्त को अपना लेते हैं। शरण आने पर अति सहवास किंवा अज्ञानता एवं प्रमादवश कुछ अपराध बन जाय तो भी "जन अवगुण प्रभु मान न

काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल स्वभाऊ॥ रहत न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति शय बार हिए की॥" "कथं चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति। न स्मरत्यपकाराणां कृतमात्म वत्तया॥' इत्यादि वाक्यानुसार प्रभु भक्त के अपराधों को क्षमा कर देते हैं। कोई जान बूझकर विशेष अपराध बन जाय तो 'रामस्त्वत्तोऽधिकं नाम" वाक्यानुसार प्रबल प्रतापी प्रभुका नाम जप करने से नष्ट हो जाता है परन्तु—'ब्रह्मरामते नाम बड़, बरदायक बरदानि' भगवन्नाम का साक्षात् अपराध करने पर अधः पात होना निश्चित ही है। और—और अपराधों के लिए तो—

मम नामानि लोकेस्मिन् श्रद्धया यस्तु कीर्तयेत्।
तस्यापराध कोटिस्तु क्षमाम्येव न संशयः॥
न तादृशं महाभाग! पापं लोकेषु विश्रुतम्।
यादृशं धरणीनाथ! मम नाम न दह्यते॥

—बाराहपुराण

इस लोक में जो श्रद्धा पूर्वक मेरे नामों का संकीर्तन करता है उसके करोड़ों अपराध मैं क्षमाकर देता हूँ यह निःसंदेह है। हे महाभाग! ऐसा कोई भी लोक प्रसिद्ध पाप नहीं है जिसको मेरा पवित्र नाम जलाकर भस्म न कर देता हो।'

शरणागत भक्तों का अपराध तो प्रभु के शरण जाकर प्रार्थना करने पर प्रभु क्षमा कर देते हैं 'परन्तु कलियुग के

प्राणियों में शरणागति के प्रधान अंग महाविश्वास का प्रायः अभाव रहता है इसलिये भगवन्नाम जप ही कलियुग में सर्वाधिक सुगम और श्रेष्ठ माना गया है। कर्म योगियों को—'सर्वं भवति निच्छिद्रं गोविन्दनाम कीर्तनात्' कहकर भगवन्नाम का आश्रय लेना ही पड़ता है। ज्ञानयोगियों को—'यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षः स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः'-सिद्धान्त मानकर दिव्य ज्ञान प्रकाशक भगवन्नाम का आधार लेना पड़ता है। भक्तियोग में भी "श्रवणं कीर्तनं विष्णोः" प्रधान है। प्रपत्ति योग में—तवास्मि जानकीकान्त कर्मणामनसा गिरा—कहकर प्रभु शरण जाना पड़ता है। इस प्रकार आध्यात्मिक मार्ग में तो भगवन्नाम सर्वसुहृद है ही परन्तु लोक में भी विपत्ति काल में "दुःख में सुमिरण सब करे" उक्ति चरितार्थ ही है। पापियों का तो भगवन्नाम ही एक मात्र आधार है। और उच्च श्रेणी के "जीवन्मुक्त सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी" बनते हैं। इस प्रकार भगवन्नाम सबका सुहृद है। भगवदपराध करने वाले और नामापराध करने वाले पापियों का भी दैन्यता पूर्वक शरण आने पर भगवन्नाम संरक्षण करता है इसीलिये तो कहा है—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतो भयम्।
योगीनां नृप निर्णीत हरेर्नामानुकीर्तनम्॥
(भाग० २।१।११)

"हे राजन्! वैराग्यशील महात्माओं ने जीवको सर्वथा

निर्भय होकर परम सुख प्राप्त करने का एकमात्र श्रीहरिनाम संकीर्तन ही श्रेष्ठ और सुलभ साधन बतलाया है।" भगवन्नाम का ऐसा प्रताप सुनकर श्रीनारदजी बोले—

के तेऽपराधा विप्रेन्द्र ! नाम्नः भगवतः कृताः।
विनिघ्नन्ति नृणां कृत्यं प्राकृतं ह्यानयन्ति हि ॥११॥

"हे विप्रेन्द्र ! भगवन्नाम के वे कौन से अपराध हैं जिनके करने पर मनुष्यों का सत्कर्म नष्ट होकर पापों का अभ्युदय होता है ?" देवर्षि नारद का प्रश्न सुनकर श्रीसनत्कुमार ऋषि बोले—

हे श्रीनारदजी ! आप तो सब जानते ही हैं परन्तु जीवों के कल्याण के लिये भगवन्नाम के प्रमुख दश-अपराधों का मैं आपको दिग्दर्शन कराता हूँ। श्रीरामनाम जापक सभी भक्तों को ये अपराध अवश्य जानने चाहियें।

प्रथम अपराध

(सन्त निन्दा)

सतां निन्दा नाम्नः प्रथममपराधो वितनुते ।
यतः ख्यातिं जातः कथमुपसहते तद्विगणनाम् ॥

"सन्तों की निन्दा करना ही नामका पहला अपराध है, जिनके द्वारा वह जगद्विख्यात हुआ है. भला-उनकी अवहेलना कैसे सह सकता है ?"

सन्तनिन्दा ही सन्तवाणी- सन्त चरित्र और सन्तों के उपास्य की निन्दा है । राजकर्मचारी का अपमान राज्य और राजशासक का भी अपमान माना जाता है । बेटे का अपमान बाप का, पत्नि का अपमान पतिका और नौकर का अपमान मालिक का अपमान ही माना जाता है । उसी प्रकार सन्त-निन्दा परंपरया भगवन्नाम और भगवान् की निन्दा है । प्रभु का स्वभाव है- 'मोरे अधिक दास पर प्रीती' उन लाडिले भक्तों का अपमान प्रभु कैसे सह सकते हैं ? 'प्रभु अपने नीचऊ आदरहीं' स्वभाव वाले भगवान् उनके बच्चों का अनादर कैसे देख सकते हैं ? ऐसे लोग 'जो अपराध भक्त कर करहीं । रामरोष पावक सो जरहीं ॥' ही हो सकते हैं । इसलिये 'राम हिं सेवक परम पियारा' मानकर उनका आदर करना ही हमारा उद्धारक हो सकता है ।

अवैष्णव नमस्कारादपमानाच्च केशवे ।
श्रीवैष्णवापवादेन पतत्येव न संशयः ॥

प्रभु विमुखों की सेवा, भगवान् का अपमान और श्री-वैष्णवों की निन्दा करने वाला निश्चय ही पतित हो जाता है। 'लोकहुँ वेद विदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं दुर्वासा ॥' सर्व प्रसिद्ध ही है—

यो हि भागवतं लोकमुपहासं नृपोत्तम ।
करोति तस्य नश्यन्ति अर्थ-धर्म-यशः प्रजा ॥

(श० क० वैष्णव शब्दगत ब्र० वै० पु० प्रकृति खंड अ० ५७)

जो भागवतों का उपहास करता है, हे राजन् ! उसका लोक में अर्थ--धर्म--यश और सन्तान नष्ट हो जाते हैं । 'रावण जबहिं विभीषण त्यागा । भयेउ विभव बिनु तबहिं अभागा ॥' कौन नहीं जानता है—

वैष्णवा विष्णुवत्पूज्या मममान्या विशेषतः ।
तेषां कृतेऽपमानेतु विनाशो जायते ध्रुवम् ॥

पूजनाद्विष्णु भक्तानां पुरुषार्थोऽस्ति नेतरः ।
तेषां द्वेषतः किञ्चिन्नाम्ति नाशनमात्मनः ॥

"श्रीवैष्णव महात्मा भगवत्समान पूज्य हैं और हमारे तो विशेष पूज्य हैं । उनका अपमान करने पर नाश हो जाना निश्चित ही है। भगवद्भक्तों के पूजने से बढ़कर कोई पुरुषार्थ नहीं है और उनका द्वेष करने जैसा आत्मपतन करने

वाला कोई अन्य अपराध नहीं है।' ऐसा यमराजा ने दूतों के प्रति स्कंदपुराण में कहा है। गरुड़पुराण का भी उपदेश है कि—

सतां गुण सहस्रेषु दोषानारोपयन्ति ये।
तेष्ववज्ञां च कुर्वन्ति वैतरण्यां पतन्ति ते॥

(ग० पु ज्ञानसागर प्रेस का, ४। १६)

'हजारों सद्गुणों से सम्पन्न सन्त महात्माओं पर जो दोषारोपण करते हैं और उनकी अवज्ञा करते हैं वे वैतरणी में गिरते हैं।' भगवद्भक्तों का अनादर करके भगवान् का भजन करने वालों के लिये पद्मपुराण कहता है कि—

अर्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयानार्चयन्ति ये।
न ते विष्णुप्रसादस्य भाजनाः दांभिकाः जनाः॥

'जो भगवान् का पूजन करके भागवतों का पूजन नहीं करते वे दांभिक भगवत्कृपा के भाजन नहीं बनते।' अपने दूतों के द्वारा भागवतापराध हो जाने पर भी यमराज को कहना पड़ा था कि—

तत्क्षम्यतां भगवान्पुरुषः पुराणो—
नारायणः स्वपुरुषै र्यदसत्कृतं नः।
स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां-
क्षान्ति र्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने॥

(भाग० ६। ३। ३०)

'हमारे दूतों ने अज्ञानतावश जो भगवत् पार्षदों के

साथ अनुचित व्यवहार किया है उसके लिये हम उस आदि पुरुष पुरातन प्रभुको नमस्कार करते हैं, वे हमारे अपराधों को क्षमा करें।' अपने दूतों पर भी शासन करना पड़ा कि—

ते देव सिद्ध परिगीत पवित्र गाथा—
ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः।
तान्नोपसीदत हरे र्गदयाभि गुप्ता—
न्नेषां वयं च न वयः प्रभवाम दण्डे॥
तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्द—
पादारविन्द मकरन्द रसादजस्त्रम्।
निष्किंचनैः परमहंस कुलैः रसज्ञै-
र्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्ध तृष्णाम्॥
जिह्वा न वक्ति भगवद् गुणनाम धेयं-
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि-
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णु कृत्यान्॥
(भाग ६।३।२७-२८-२९)

जो भगवत्प्रपन्न समदर्शी संत हैं उनकी पवित्र कथायें देव सिद्ध और सज्जन गाया करते हैं, वे प्रभु की गदा से सुरक्षित रहते हैं, उनको कभी मत सताना, उनको दण्ड देने का सामर्थ्य न तो हममें है और न तुम में। यदि तुम्हें दण्ड देने का व्यसन पड़ गया है तो उन पापियों को ले आओ जो भग-

वद्विमुख हैं, प्रभु के चरणारविंदों के मकरंद का मधुर रस-पान नहीं करते और प्रभु प्रेमरसोन्मत्त अकिंचन परमहंस महात्माओं की परंपरा में प्रविष्ट न होकर केवल घरकी तृष्णा जाल में बँधे हुए असाधु हैं। जिनकी जिह्वा भगवन्नाम का गान नहीं करती, जिनका मन भगवत्स्वरूप का चिन्तवन नहीं करता, जिनका मस्तक भक्त और भगवान् के चरणों में नहीं झुकता, और जिनके हाथ-पग भगवत्कैंकर्य नहीं करते उन पापियों को लाकर यमयातना से पीड़ित करो।' अर्थात् जो भगवत्संबंधी कुछ भी करते रहते हैं उनको लाने का साहस कभी मत करना। क्योंकि भक्तद्रोही की रक्षा खुद भगवान् भी नहीं करते, भक्तवर अम्बरीष का अपमान करने पर सुदर्शन-चक्र से भयभीत दुर्वासा समस्त ब्रह्माण्ड के देवताओं के शरण जाने पर भी भयमुक्त न हो सके, अन्त में भगवच्छरण गये तब शरणागत भक्त की रक्षा करने की प्रतिज्ञा वाले सत्य संकल्प प्रभुको भी बड़े फेर में पड़ना पड़ा और कहना पड़ा कि—

अहं भक्त पराधीन ह्यस्वतंत्र इव द्विज !
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्तजन प्रियः ॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तै साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यंतिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहंपरा ॥

(भाग० ९। ४। ६४)

"हे द्विज! मैं भक्तों के पराधीन हूँ। जो स्वतंत्र नहीं है वह दूसरों की रक्षा क्या कर सकेगा? भक्तजनों ने मेरे हृदय

को वशीभूत कर लिया है। मैं अपने भक्तों के बिना अपने आपको और श्रीदेवी को भी नहीं चाहता जिनकी एकमात्र मैं ही गति हूं वे भक्त मेरे प्राण हैं।"

श्रीमुख के वचनों को सुनकर दुर्वासा की आँखें खुलीं। प्रभुने शरणागत रक्षा का विरद बचाने के लिये महर्षि को रक्षा का उपाय बतलाया। "विषस्य विष मौषधम्" प्रयोग किया गया। 'भक्त के अपराध का मार्जन भक्त की कृपा ही है' यह तत्त्व समझाकर दुर्वासा को पुनः भक्तवर अम्बरीष के पास भेजा गया और तब वे भक्त कृपा से निर्भय हुये। अन्त में मुक्तकण्ठ से महर्षि दुर्वासा को कहना पड़ा—

अहो अनन्त दासानां महत्वं दृष्टमद्य मे।

(भाग० ९। ५। १४)

'अहो! भगवद्भक्तों के प्रभाव को आज मैंने देखा!' भक्त के लिये भगवान् को भी झूठा बनना पड़ता है, भीष्म-पितामह के लिए प्रभु को अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी। उन भक्तों का अपराध करना महापाप है, उनकी निन्दा करना नरक की खान है। महर्षि दुर्वासा को अन्त में पश्चात्ताप करना पड़ा—

(१)

हम भक्तन सो भूलि बिगारी।
जान्यो नहीं इतो बल इनको, ये हरि के अधिकारी ॥
कमलपराग भँवर भल जानै, वहै बासना बिहारी।

निपट नाल के निकट मेढुका, भयो कीच को चारी ॥
काम, क्रोध, मद, अतिशय जड़मति, तपबल बढयो बिकारी
अङ्गीकार किये हरि इनको, यह हम कछु न विचारो ॥
दुर्वासा अंबरीष आगे करि, जाय दीनता भारी ।
'अग्रदास' अहंकार पोटरो, ऋषि शिर ते तब डारी ॥

(२)

हरि भक्तन सो गर्व न करिबो ।
यह अपराध परमपदहूँ ते, उतरि नरक में परिबो ॥
गज सिंहासन अश्व ऊँट चढि, भवसागर नहिं तरिबो ।
हम कुलवन्त धनी ये भिक्षुक, नीच नयन में धरिबो ॥
यह मत भलो नहीं आपुन बड़, खर कूकर अनुसरिबो ।
हरिसेवक यश गायक को लघु मानत नेकु न डरिबो ॥
अपने दोष निपट आधे करि, दोष कुतर्कन जरिबो ।
बृथा चातुरी वादि ठानिहठ, पुनि-पुनि गर्भ में गरिबो ॥
खान पान अभिमान आदि में नाहक रचि-पचि मरिबो ।
'श्रीकृष्णदास' हित धरि विवेक चित, साधुन संग उबरिबो ।

(३)

श्रीपति दुखित भक्त अपराधे ।
सन्तन द्रोह द्वेषिता करिके, आरति सहित जो मोहि अराधे ॥
सुनौ सकल वैकुण्ठ निवासी, सत्य कहौं मानहु जनि खेदै ।
तिन्हपर कृपा करौं मै कैसे, पूजत पांव कण्ठ को छेदै ॥

सन्तन वैर प्रीति जो मोसे, मेरो नाम निरन्तर लैहै ।
'अग्रदास' भगवन्त बदत यों, मोहूँ सुमिरत यमपुर जैहैं ॥

(४)

हरि भक्तन ते समधी प्यारे ।
आये भक्त दूर बैठारो, फोरत कान हमारे ॥
दूर देश ते समधो आये, ले घर में पैठारे ।
उत्तम भोजन और मिठाई, नाना भांति संवारे ॥
भक्तन को दै चून चनाको, कीन्हें एक किनारे ।
'व्यासदास, ऐसे विमुखन को, यमगण हेरत हारे ॥

यथार्थतः भक्त और भगवान् एक हैं। 'सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहिं' सिद्धान्त ही समीचीन है। शास्त्रकारों ने और स्वयं प्रभु ने तो भक्तों को अपने से भी बड़े माने हैं। भागवतों की सेवा साधना से श्रेष्ठ पापियों को शुद्ध करने वाला दूसरा कोई उपाय है ही नहीं । तभी तो श्रीशुकदेवजी को कहना पड़ा—

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः ।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुष निषेवया ॥
(भाग० ६ । १ । १६)

वैष्णवांघ्रि जलं यस्तु समस्त पातकापहम् ।
वहेत्स्व शिरसा भक्त्या गंगा स्नानेन तस्य किम् ॥
(वेंकटेश्वर प्रेस का पद्म पुराण, क्रियायोगसार खंड अ० २।३२)

कोटि जन्मार्जितं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
सद्यः प्रणश्यते नृणां वैष्णवोच्छिष्ट भोजनात् ॥

(पारा० धर्मशास्त्र, उ० खं० १० । ३०)

हे राजन् ! पापी पुरुष तप-यज्ञादि से उतना पवित्र नहीं होता जैसा कि भगवत्प्राण सन्तों की सेवा से शुद्ध हो जाता है। वैष्णवों के चरणों का समस्त पापहारक पादोदक जो भक्ति पूर्वक मस्तक पर धारण करता है उसको गंगा स्नान से क्या प्रयोजन ? करोड़ों जन्मों का उपार्जित पाप भी ज्ञान अथवा अज्ञान से श्रीवैष्णवों का उच्छिष्ट भोजन करने से सद्यः नष्ट हो जाता है ।' तभी तो सन्तों ने कहा है कि—

प्रभु अपने मुख सों कही, साधू मेरी देह ।
उनके चरणन की मुझे, प्यारी लागे खेह ॥

—चरणदासजी

कह मलूक सब छांड़ि कै, गहि ले यह माला ।
जोइ-जोइ मूरति सन्त की, सोइ-सोइ गोपाला ॥

—मलूकदासजी

निराकार की आरसी, है सन्तन की देह ।
लखा जो चाहो अलख को सन्तन में लखि लेह ॥
साधु हमारी आतमा, साधु हमारे जीव ।
साधु मध्य हम यों रहें, ज्यों पय मध्ये घीव ॥

प्रभु भक्तों से घृणा करने वालों को श्रीव्यासदेवजी ने खूब ही कहा है—

जूठन जे न भक्त की खात।
तिनके वदन सदन नरकन के, जे हरि जनहिं घिनात॥
काम विवश कामिनि के पीवत, अधरन्ह लार चुआत।
भेंटत सुतहिं लेंट मुख लागत, सुख पावत जड तात॥
भक्तन पीछे सब डोलत हैं हरि गंगा अकुलात।
साधु चरण रजमांझ 'व्यास'से कोटिन्ह पतित समात॥

इस संसार में डूबते हुये प्राणियों का आधार सन्त ही है, अज्ञान रूपी अन्धकार और जडता रूपी जाडा नष्ट करने वाले सूर्य एवं अग्नि स्वरूप सन्त ही हैं। सन्त ही उस अनन्त ऐश्वर्य में छिपे हुये परमात्मा का साक्षात्कार कराने वाले हैं। इसलिये सन्तों की निन्दा करने का कभी साहस न करना चाहिये। भगवत्प्रिय भक्तों का कर्तव्य है कि सन्तोंका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हों और अपना अहोभाग्य समझें शास्त्रकारों का उपदेश है कि—

नाम युक्ताञ्जनान्दृष्ट्वा स्निग्धो भवति यो नरः।
स याति परमं स्थानं विष्णुना सहमोदते॥

जो नाम जापक सन्तों को देखकर परम प्रसन्न होता है वह परमपद में भगवान् के साथ विहार करता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी तो यहाँ तक कहते हैं कि—

धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्रवर सोइ ।
तुलसी जो रामहि भजे, जैसेहु कैसेहु होइ ॥
तुलसी जाके वदन ते, धोखेहु निकसत राम ।
ताके पग की पद तरी, मेरे तनु कः चाम ॥
तुलसी भक्त श्वपच भलो, भजै रैन दिन राम ।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहां न हरिको नाम ॥
अति ऊँचे भूधरन्हि पर, भुजगन्ह के अस्थान ।
तुलसी नीचे अति सुखद, ऊख अन्न रस पान ॥

यहाँ प्रत्येक साधकों को इतना ध्यान में रखना चाहिये कि भगवान् का नाम रूप-लीला और धाम चारों एक हैं। इसलिये नवधा-भक्ति में से किसी भी एक भक्ति का भी आश्रय लेने वाले भगवत्प्रिय बन जाते हैं अतएव किसी भी प्रकार से भगवान् का आराधन करने वाले भक्त सन्त की निन्दा या अपमान करना महापाप है । मन-वचन कर्म से इस महान् भगवन्नामापराध से अपने आत्मा को सर्वदा बचाते रहना ही परमधर्म है ।

इति श्रीदश-नामापराधे सन्त-निन्दा वर्णन
नामक प्रथम अपराधः ॥१॥

दूसरा अपराध

प्रभु के गुण नामों में भेद बुद्धि

शिवस्य श्रीविष्णोर्यं इह गुणनामादि सकलं—
धियाभिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामाऽहितकरः ।

समस्त मायिकगुणों से रहित "शिवस्य मंगलमूर्तेः" मङ्गलमूर्ति भगवान् के नाम और गुण दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप हैं "न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥" (श्वेता० ६ । ८) अर्थात् न उसका कोई कार्य और कारण है और न कोई उसके समान एवं अधिक है । उस प्रभुकी स्वाभाविक परात्परा शक्तियाँ ज्ञान-बल और क्रियादि शब्दों द्वारा सुनी जाती हैं । तथापि जो कोई उसको दिव्य एवं स्वाभाविक न मानकर भगवत्स्वरूप से पृथक् मायिक मानता है वह भगवन्नामापराधी है ।

'तदुक्तं भवति यः कश्चिद्भगवत्स्वरूपं निर्गुणं वदन्ति तस्य गुणनामादि कर्मोपाधिकं वदन्ति ते हरिनामापराधिनः ज्ञेयाः । नाम्न. औपाधिकत्वेनानित्य प्रसंगत्वात् ।'

(नामापराध भाष्य)

"तात्पर्य यह है कि जो कोई भगवान् के निर्गुण स्वरूप का प्रतिपादन करते हुये भगवन्नाम और औदार्य सौशील्य-

वात्सल्य·गांभीर्य·सौन्दर्य शरण्यत्वादि भगवद्गुणों को औपाधिक मानते हैं वे भगवन्नामापराधी हैं। ऐसा करने से मायिक कार्यों की भाँति भगवान् के दिव्य गुण और नाम भी अनित्य हैं ऐसा भगवन्नाम में अनित्यत्त्व का आरोपण होता है। इसलिये भक्तों को भगवन्नाम और गुणों को दिव्य सच्चिद्रूप समझने चाहिये।

दूसरा अर्थ यह है कि "शिवत्युपलक्षणमन्येषां भागवतानां (नामा० भा०) शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप भगवद्भक्त और भगवान् में विभेद समझना भगवन्नामापराध है क्योंकि—"रसं वैष्णव जिह्वायां गृह्णामि कमलोद्भव"

'मैं नानाविध पकवान और व्यंजनों का रस भागवतों की जिह्वा से ग्रहण करता हूँ' यह भगवद्वाक्य भागवतों के साथ भगवान् का अभेद सिद्ध करता है। श्रीमद भागवत में भी—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत्तेन जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

(९ । ४ । ६८)

तस्मिंस्तज्जने भेदा भावात् (ना० भ० सू० ४१)
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।

(गीता ९ । २९)

'साधु मेरे हृदय हैं और मैं साधुओं का हृदय हूं। मेरे सिवा वे कुछ नहीं जानते और उनके सिवा मैं कुछ नहीं

जानता। भगवान् में और भगवत्‌जन में भेद नहीं है। जो मेरा भजन करते हैं मुझमें वे हैं और मैं उनमें हूँ। महात्माओं ने 'देहि सत्संग निज अंग श्रीरंग' माना है, फिर भी जो उनमें भेद मानते हैं वे अपराधी हैं। तात्पर्य यह है कि सन्तों में विभेद मानने से उनके प्रति तुच्छ बुद्धि होगी और उनके आचरण एवं नाम महिमा सूचक उपदेशों के प्रति भी क्रमशः उपेक्षा ही चलेगी। इस प्रकार कुछ दिनों में नामानुरागी भी नामप्रेमशून्य हो सकता है अतएव सन्त-भगवन्त-सद्‌गुरु और प्रभुके नाम-रूप-लीला-धाम में अभेद मानना ही कल्याण का साधन है।

तीसरा अर्थ -- 'वैष्णवानां यथा शंभु' मानकर श्रीशंकर-जी के गुण और नामों को भगवान् से पृथक् मानते हुये मोक्ष-प्रद मानना भी अपराध है। अर्थात् श्रीशंकरजी भगवान् की सत्ता से शक्ति सम्पन्न हैं। भगवन्नाम के प्रभाव से प्रभावित हैं, वे 'महामंत्र जेहि जपत महेशू। काशीमुक्ति हेतु उपदेशू॥ नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको॥ तुम पुनि रामराम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती॥' आदि प्रमाणों से भगवन्नाम जापक हैं और उसी बलपर मोक्ष देते हैं, स्वतंत्रतया नहीं। फिर भी उन्हें स्वतंत्रतया भगवान् से पृथक् मानकर मोक्षप्रद समझना भी नाम का अपराध है, श्रीशंकरजी स्वयं स्वीकार करते हैं कि—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमणि मम स्वामि सोई कहि शिव नायऊ माथ॥

भगवच्चरणों की आराधना तो सबको करनी पड़ती है और उसी आराधना के बल पर सभी देवता अपने प्रभुत्व को सुरक्षित रखते हैं। तभी तो महात्मा कहते हैं—

जाके चरण विरंचि सेइ सिधि पाई शंकर हूँ।
शुक सनकादि मुक्तमुनि विचरत भजन करत अजहूं॥

यथार्थतः बात यह है कि—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(रामतापनी, उत्त० ६)

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्म बुद्धि प्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

(श्वेता० ६। १८)

'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं—
तस्यभासा सर्वमिदं विभाति।'

(श्वेता ६। १४)

भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः।
भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचम॥

(तैत० ब्रह्मानन्दवल्मीं, ८ अ०)

'जिस सच्चिदानन्दघन भगवान् में योगिजन निरन्तर रमण करते हैं उसी परब्रह्म प्रभुका नाम श्रीराम है। "जिन्होंने पहले ब्रह्मा को बनाकर वेदों का ज्ञान सिखाया उस बुद्धि और आत्मा के प्रकाशक देव भगवान् श्रीराम के शरण में हम मोक्ष की कामनासे प्राप्त हैं।" "उन्हीं के प्रकाश से सब प्रकाशित है वे सबके प्रकाशक हैं। उनके भय से पवन चलता है सूर्य उदय होता है, अग्नि जलाता है, इन्द्र शासन करता है और मृत्यु दौड़ता है।" वे सर्व समर्थ राम सूत्रधर अन्तर्यामी प्रभु हैं। उनसे विमुख होने पर उनकी प्रबल माया—"शिव विरंचि कहँ मोहई को है बपुरा आन।" इसीलिये शास्त्रकार समझाते हैं कि—

एत एव महामन्त्रं ब्रह्मरुद्रादि देवता।
ऋषयश्चमहात्मानो मुक्त्वा जप्त्वा भवाम्बुधौ ॥
(वृद्ध हारीत ६। २४१)

यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः।
जन्तोः दक्षिणकर्णे तु मत्तारं समुपादिशेत् ॥
(मुक्तिकोपनिषद। २०)

न तदस्तिविना यत्स्याद्वासुदेवेन किंचन।
ब्रह्मा शक्रश्चरुद्रश्च गणेशोभास्करस्तथा ॥२०८॥
कैंकर्यं वासुदेवस्य मुक्तिमिच्छन्ति तत्पदे।
कथं तैरितरे सेव्यास्तदोयत्वमतिं बिना ॥ २११॥
(वृ० ब्र० सं० पा० ३ अ० ८)

इसी श्रीरामषड्क्षर महामंत्र का जप करके ब्रह्मा-रुद्र-देवता ऋषि और महात्मा भवसागर से मुक्त हुए । काशी में जहां कहीं भी कोई जन्तु मर जाता है तो श्री शंकरजी उसके दाहिने कान में मेरा तारक श्रीराममंत्र सुनाते हैं। भगवान् के बिना संसार में कुछ भी नहीं है। ब्रह्मा-इन्द्र-रुद्र-गणेश और सूर्य आदि सभी देवता प्रभु की सेवा चाहते हैं, भला उन प्रभु-के प्यारों को प्रभु के न मानकर पृथक् कैसे पूजे जा सकते हैं !' तभी तो गोस्वामीजी ने मुक्तकण्ठ से कहा है कि—

ईश न गणेश न दिनेश न धनेश न,
सुरेश सुर गौरि गिरापति नहीं जपने।
तुम्हरेई नामको भरोसो भव तरिबे को,
उठे बैठे जागत बागत सोये सपने ॥

भक्तों को ऐसा ही अनन्य भाव रखकर 'वन्दो सबहि राम के नाते' मानना चाहिये। अन्यथा—

येऽर्चयन्ति सुरानन्यास्त्वां विना पुरुषोत्तम ।
ते पाषण्डत्वमापन्ना सर्वलोके बिगर्हिताः ॥

(पद्म उ० खं० २२५। ५८)

जो भगवान् के विना अन्य देवताओं का पूजन करता है वह सर्वलोक में गर्हित और पाखण्डी बनता है । अन्य देवताओं का स्वतंत्रार्चन करने से अनेकेश्वरवाद होता है और भगवान् के प्रति भी अन्य देवों जैसी सामान्य बुद्धि हो

आती है जो भगवन्नाम का महान् अपराध है अतएव सबको भगवद्विभूति मानकर पूजना ही श्रेयस्कर है।

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवाव गच्छत्वं मम तेजोंऽश संभवम्॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता, १०।४१।४२)

'जो जो विभूति-कान्ति शक्ति और तेज देखता है वह सब मेरे अंश से उत्पन्न हुआ समझ। अथवा हे अर्जुन! बहुत सी बातों के बखेड़े में न पड़कर इतना ही समझ ले कि सम्पूर्ण जगत् को मैं अपनी माया के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूं।'

चौथा अर्थ 'धियाऽभिन्नम्' पाठ मानकर श्रीविष्णु और श्रीशिवजी के गुण नामादि सब कुछ एक समझता है अर्थात् सात्विक और तामसी गुणों का संमिश्रण कर दोनों को एक मानता है वह भी नामापराधी है, भगवान् शंकर भगवत्प्रेमी होने से भगवान् से भिन्न नहीं है परन्तु "तामसानां विमोहाय" जो वेष धारण किये हैं उसको मानकर भगवद्विमुख होना और भगवन्नाम के समान उनके तामसीरूप के नामों का गुणगान करने में हित समझना नामापराध है। क्योंकि—

माहं कैवल्यदो राजन् परतंत्रः स्वभावतः ।
स्वतन्त्रः सर्वभूतात्मा परमात्मा रमापतिः ॥

(बृ० ब्र० सं० ३ । ६ । ३२)

श्रीशंकरजी भद्रासन राजासे कहते हैं कि—'हे राजन् ! मैं मोक्ष देने में स्वतंत्र नहीं हूँ मैं तो स्वभावतः भगवदाधीन हूँ। स्वतंत्र तो एक सर्वेश्वर प्रभु ही हैं। अनन्य शिवभक्त घंटाकर्ण भी कहता है कि—

मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः ।
मुक्तिदाता च सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ॥

(हरिवंश पु० ८४ अ०)

मेरी मुक्ति की प्रार्थना सुनकर भगवान शंकर ने कहा कि सभी जीवों को मोक्ष देने वाले श्रीविष्णु हैं इसमें सन्देह मत करना।' ऐसे अनन्य भक्ति प्रचारक श्रीशंकरजी को भगवान् की सत्ता से पृथक् मानना अवश्य ही अपराध है । इसलिए उन्हें भगवदीय मानकर भगवन्नाम का अनुष्ठान करना चाहिये ।

* इति द्वितीय नामापराधः *

तीसरा अपराध

(श्रीगुरुदेव का अपमान)

मूल 'गुरोरवज्ञा'—

श्रीगुरुदेव का अपमान अथवा उपेक्षा करना नाम जप का तीसरा अपराध है । हरि-गुरु-सन्त एक हैं। जैसे सन्त भगवान् का प्रचार करते हैं वैसे ही गुरु महाराज भी। गुरु के अपमान में उनके उपदेश और आचरण का भी अपमान आ जाता है, उनका उपदेश नाम जप नरक और जीवन नाम परायण होने से उनका अपमान नामका प्रसिद्ध अपराध हो जाता है। एक तो गुरु विमुख प्रभु प्रिय नहीं बन सकता, दूसरे गुरुदेव का अपमान करने पर उनसे श्रेष्ठत्व और पाण्डित्य का घमण्ड सवार होगा। तीसरे उनके बताये हुए मार्ग पर अश्रद्धा होगी, चौथे गुरुद्रोही का सन्त सभा में आदर न होगा और नरक में भी जाना पड़ेगा, इसलिये ऐसा अपराध भूलकर भी न करना चाहिये। गरुडपुराण इसीलिये उपदेश देता है कि—

नीचानुरागिणो मूढाः सत्संगति परांमुखाः।
तीर्थ सज्जन सत्कर्म गुरुदेव विनिंदकाः॥ ६॥
मातरं येऽवमन्यन्ते पितरं गुरुमेव च।

आचार्यं चापि पूज्यं च तस्यां मज्जंति तेनराः ॥१४॥
अध्यात्म विद्यादातारं नैव मन्यन्ति ये गुरुम् ।
तथा पुराणवक्तारं ते वै नरक गामिनः ॥ ४६ ॥
(ज्ञानसागर प्रेस बम्बई का अ० ४)

गुरोर्गर्वेणावमानादपस्मारी भवेन्नरः । ७ ॥
गुरूसेवामकर्ता च शिष्यः स्यादगोखरः पशुः ॥२०॥
गुरुं हुँकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्यवादतः ।
अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ २१ ॥
(अ० ५)

एवं गुरूपदेशेन मनो निश्चलतां व्रजेत् ।
न तु स्वेन प्रयत्नेन तद्विना पतनं भवेत् ॥ ८६ ॥
(अ० १५)

'नीचों में अनुराग करने वाले, मूढ़ सत्संग से विमुख तीर्थ, सज्जन, गुरु और देवताओं के निन्दक, माता-पिता-गुरु और आचार्य एवं पूज्यों का अपमान करने वाले उस वैतरणी में डूबते हैं। अध्यात्म विद्या देने वाले और पुराणों का मर्म समझाने वाले को जो गुरु नहीं मानते हैं वे नरकगामी हैं। जो गर्व से गुरुदेव का अपमान करता है वह मृगी का रोगी होता है, श्रीगुरुदेव की सेवा न करने वाला पशु और गदहा आदि नीच योनियों में जाता है। श्रीगुरुदेव को रे-तू कहकर अपमान करने वाला और ब्राह्मण को लड़ाई में जीतने वाला

निर्जन वनमें ब्रह्म राक्षस होता है। इसलिये श्रीगुरुदेव के उपदेश से मनको निश्चल बनावे अपने प्रयत्न से अवश्य ही पतन का भय रहता है।'

यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीप प्रदे गुरौ।
मर्त्या सद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जर शौचवत्॥
(भाग० ७।१५।२६)

यादृशोभावनायस्य गुरोः प्रकुरुते नरः।
करुणाब्धेः भगवतस्तादृशी तादृशी कृपाम्॥

अर्थात् जिसको भगवत्स्वरूप का प्रकाश करने वाला ज्ञान दीप देने वाले श्रीसद्गुरु में मनुष्यत्व भावना है उसका पढा सुना हाथी के स्नान की भांति व्यर्थ ही है। जैसी-जैसी श्रीगुरु चरणों में मनुष्य प्रीति करता है वैसी ही भगवान् की कृपा होती है।

'मर्त्यसामान्यभावेन गुर्वादौ नाति गौरवम्'
—हनुमत्संहिता

मनुष्यवत् मानकर श्रीगुरुदेव के गौरव को भूल जाना भगवत्प्राप्ति का विरोधी है। भगवान् की आज्ञा है कि—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्य बुद्धयासूयेत सर्वदेव मयो गुरुः॥
(भाग० ११।१७।२७)

आचार्य को मेरा ही स्वरूप समझें, उनका कभी अपमान न करे और न उन्हें मनुष्यवत् समझें, श्रीगुरुदेव सर्वदेवमय है।'

श्रीआचार्य के उपदेश बिना शुद्ध साम्प्रदायिक रहस्य मालूम न होगा, अन्त में नाना चित्त विभ्रान्त बनकर भगवन्नाम का अवलंब छोड़ देने में भी देर न लगेगी।

राम रामेति रामेति ये जपन्ति च सर्वदा।
तेषां मुक्तिश्च भुक्तिश्च भविष्यति न संशयः॥

—सनत्कुमार संहिता

स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एकही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर॥

यह उपदेश श्रीआचार्य ही दे सकते हैं। स्त्री पुत्र और परिवार तो स्वार्थमय बनाकर धन-धाम की सार सँवार में जन्म विता देने का ही प्रयत्न करते रहते हैं, उनके द्वारा भगवन्नाम और भगवन्मार्ग का तत्त्व मिलना संभवही नहींहै। वे तो सन्त और सद्गुरु की सेवा भी न करने देंगे कहेंगे कि "हरि-गुरु-सन्त की सेवा में ही सब लुटा दोगे तो बाल बच्चे भूखे मरेंगे, हम क्या खायेंगे?" जीव भी संसार की माया में बद्ध होने से उनका कहा मानकर पथभ्रष्ट हो जायगा अतएव गुरुदेव का उपदेश और सेवा कभी न छोड़ना चाहिये। अर्थ-पंचक-तत्त्वत्रय रहस्यत्रय-आकारत्रय, पंचसंस्कार, नवेज्या कर्म और परमैकान्तिकता का आन्तरिक मर्म सच्चे

सद्गुरु ही बता सकते हैं। उनकी अवज्ञा करने से हम इन तत्त्वों को समझ न सकेंगे और बिना इन रहस्यों के समझे भगवन्नाम और भगवद्धर्म में दृढ़ अनुराग नहीं हो सकता, अतः सद्गुरु सेवा ही नाम जापकों का अवलंब है। उनकी अवज्ञा महा अपराध है। श्रीगुरु सेवा के अपराधों से बचकर भगवन्नाम स्मरण करना चाहिये। वे अपराध इस प्रकार हैं—

(१) श्रीगुरु महाराज के आने पर प्रेम पूर्वक उठकर प्रणाम न करना (२) अपने घर में मांगलिक उत्सवों पर श्री-गुरुदेव को बुलाकर सेवा सत्कार न करना (३) श्रीगुरुदेव और उनके शिष्य अथवा सन्त बिमार पड़े हों तब शक्ति रहते हुए भी सेवा न करना (४) हमारे अन्य गुरुभाई यह सेवा कर लेंगे ऐसा समझकर श्रीगुरु सेवा में आलस्य करना (५) श्रीगुरु महाराज अमुक शिष्य को अधिक मानते हैं वही सब कुछ करेगा मैं क्यों करू'? इस प्रकार ईर्षा करना (६) श्री-गुरुदेव का अमुक शिष्य गद्दी का मालिक और पूज्य होगा हमें क्या पड़ी है ? ऐसा समझकर श्रीगुरुद्वारे की सेवा छोड़ देना (७) श्रीगुरु महाराज का प्रसाद चरणामृत तथा उनकी सेवा लोक लज्जा के भय से छोड़ देना (८) श्रीगुरु महाराज की आज्ञा का उल्लंघन करना (९) स्वार्थवश श्रीगुरुदेव का धन अपहरण करना। (१०) क्रोधवश अहंकार में आकर हल्के बचन कहना (११) श्रीगुरु महाराज के रहते हुये भी उनकी आज्ञा विना दूसरों से उपदेश लेना (१२) श्रीगुरुदेव के बत-

लाये हुये साधन में अविश्वास रखना (१३) दूसरों के मुँहसे श्रीगुरुदेव की निन्दा सुनना और उनके गुण दोषों की आलोचना करना (१४) भजन और पाठ पूजा करते हों उस समय श्रीगुरुदेव बुलावें तो भी न बोलकर मौन रहना अथवा आचमन करके बोलना (१५) श्रीगुरुदेवके सामने खड़ाऊं पहनकर चलना और ऊंचे आसन अथवा बेराबरी आसन पर बैठना (१६) हरि-गुरु और सन्त में भेद मानना, उन्हें साधारण मनुष्य समझकर ईश्वर भाव न रखना इत्यादि कई अपराधहैं संक्षेपतः—श्रीगुरु महाराज की इच्छा विरुद्ध कोई भी कार्य करना अपराध है। श्रीगुरु महाराज का, श्रीगुरुद्वारे का, उनके शिष्य और सम्प्रदाय का, उनके उपदेश और धर्म का लौकिक अथवा पारलौकिक किसी भी प्रकार का अहित न हो वैसा कर्तव्य करना ही शिष्य का परम धर्म है। इसलिये अपने मान-प्रतिष्ठा बड़ाई और सुख का विचार न रखकर संकटों को सहते हुए भी श्रीगुरुदेव की आज्ञा मानना ही शिष्य का कर्तव्य है। श्रुति की आज्ञा है कि—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥
(श्वेताश्व० ६।२३)

'जिसको इष्टदेव में परम प्रीति है और जैसी देव में प्रीति है वैसी ही श्रीगुरु चरणों में भी, उसी के लिये महात्माओं ने ये तत्त्व कहे हैं।'

मातु-पिता-प्रभु-गुरु की बानी। बिनहि बिचार करिय हितमानी ॥
जे गुरुचरण रेणु सिर धरहीं। ते जनु सकल विभव बशकरहीं ॥
जे गुरुपद अंबुज अनुरागी। ते लोकहु वेदहुँ बड़ भागी ॥
जे शठ गुरुसन ईर्षा करहीं। रौरव नरक कल्प शत परहीं ॥

गुरु अवज्ञा का तात्पर्य यह है कि—हमें जब भगवन्नाम ही तारने वाला है तब गुरुशरण जाने की क्या आवश्यकता ? श्रीगुरु दीक्षा लेने का क्या प्रयोजन ? स्त्री को पति ही गुरु है तब दीक्षागुरु अथवा उपदेष्टा गुरु के पास जाने से क्या प्रयोजन ? इत्यादि कुतर्कवाद में फँसकर भगवन्नामापराध के पाप पंक में पड़ना अहितकर है। श्रीगुरुदेव के विषय में अधिक देखना हो तो 'आचार्यतत्त्व' पढ़ना चाहिये। यहां तो इतना ही कह देना पर्याप्त है कि प्राणीमात्र को गुरुशरण जाने का अधिकार है, स्त्रियें और शूद्र भी श्रीगुरु कृपा के प्रतापसे मोक्ष पद पा चुके हैं, हाँ श्रीगुरुदेव यथार्थतः सच्चे सद्‌गुरु होने चाहिये, अन्यथा पाखण्डियोंके पंजे में फँसकर धन-धर्म और मोक्ष से हाथ धोना पड़ेगा। अतएव भगवन्नाम की उदार छत्र छाया में आने के लिये भगवन्नाम जापक सच्चे सदाचारी श्रीवैष्णव सन्त के चरण शरण जाकर उन्हें श्रीगुरु रूपेण वरण कर अपने जीवन को कृतार्थ करना चाहिये। यदि ऐसा न कर श्रीगुरुदेव की अवज्ञा अथवा उपेक्षा करेंगे तो भगवन्नामापराधी बनना पड़ेगा।

'कबिरा' निगुरा ना मिले, पापी मिलें हजार।
एक निगुरा के शीश पर, लख पापों का भार ॥
परमेश्वर से गुरु बड़े, गावत वेद पुरान।
'सहजो' सहजहि में मिले, गुरुके घर भगवान् ॥

फल टूटयो जल में गिरयो, 'खोजी' मिटी न प्यास।
बिना गुरू गोविन्द भजे, निश्चय नरक निवास ॥
सांकट ब्राह्मण नां मिले वैष्णव मिले चांडाल।
अंक माल दै भेंटिये, मानो मिले गोपाल ॥

राम तजूँ पै गुरु न विसारूं। गुरुके सम हरि कूँ न निहारूं ॥
हरिने जनम दियो जगमाहीं। गुरुने आवागमन छुटाहीं ॥
हरिने पांच चोर दिये साथा। गुरूने लई छुड़ाय अनाथा ॥
हरिने कुटुम्ब जालमें गेरी। गुरूने काटी ममता बेडी ॥
हरिने रोग भोग उरझायो। गुरु योगी कर सबै छुडायो ॥
हरिने कर्म भर्म भरमायो। गुरुने आतम रूप लखायो।
हरिने मोसूँ आप छिपायो। गुरु दीपक दै ताहि दिखायो ॥
फिर हरि बन्ध मुक्ति गति लाये। गुरुने सबही भरम मिटाये ॥

इति श्रीदशनामापराधे गुरु अपमान वर्णन नाम तृतीय अपराधः ॥ ३ ॥

चौथा अपराध

वेद शास्त्रों की निन्दा

मूल 'श्रुति शास्त्र निन्दनम्'

जैसे सन्त और सद्गुरु भगवन्नाम का माहात्म्य वर्णन कर जीवों को भगवत्सम्मुख बनाते हैं वैसे ही शास्त्र भी—

सा हानि तन्महच्छिद्रं स मोहः स च विभ्रमः।
यन्मुहूर्तं क्षणं वाऽपि वासुदेवं न कीर्तयेत् ॥

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरण भजन न होई ॥

राम सुमिरण सब विधि ही को राजरे।
राम को विसारिबो निषेध सिरताजरे ॥

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न कर्हिचित्।
सर्वे विधि निषेधास्स्युरेतयोरेव किंकराः ॥

इत्यादि वचनों द्वारा भगवन्नाम का अतुलनीय प्रभाव बतलाते हैं। यदि उनमें विश्वास न होगा तो भगवन्नाम में भी विश्वास न होगा। क्योंकि पारमार्थिक तत्व प्रत्यक्ष तो हम देख नहीं सकते हैं, शास्त्र ही हमारे सिद्धांत पोषक हैं, यदि उनको न मानेंगे निन्दा करेंगे तो भगवदाज्ञा उल्लंघन और भगवन्नाम का उपहास करने का पाप लगेगा। भगवन्निष्ठ

बुद्धि तो "नैषा तर्केणमतिरापनेया" (कठ० २ । ६) तर्क से प्राप्त नहीं होती। इसीलिये तो यमराजा कहते हैं—

देवैरत्राऽपि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेषधर्मः।
(कठ० १ । २१)

हे नचिकेता ! यह धर्म का तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। पहले देवगण भी इस विषय में संशय-ग्रस्त हो गये थे।' उसी तत्त्व का शास्त्र भली-भाँति प्रतिपादन करते हैं अतएव वेद और शास्त्रों की कभी निन्दा न करना चाहिये। मनु का कथन सत्य ही है कि—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रांजिघांसति ॥

वेदों का पठन पाठन छोड़ देने से, सदाचार का परित्याग करने से, आलस्य से और अशुद्ध अन्न का आहार करने से मृत्यु ब्राह्मणों को मारना चाहती है। गीता में भी—

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥
(गी० १६ । २३)

जो शास्त्र विधि का परित्याग कर अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द आचरण करते हैं, न तो उन्हें सिद्धि प्राप्त होती है और न सुख और परमगति ही' वास्तव में श्रुति शास्त्र भगवान् के कानूनी ग्रन्थ हैं। उसको न मानना उनका कानून

भंग करना है। जैसे राज कानून तोड़ना राजद्रोह है वैसे भगवदाज्ञा न मानना भगवद्रोह है। श्रीमुख वचन भी है—

श्रुति स्मृति ममैवाज्ञा यस्तामुल्लंघ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी ममद्रोही न भक्तो नैव वैष्णवः॥

(गोतमीय संहिता २ अ०)

श्रुति और स्मृति मेरी आज्ञा है जो उनका उल्लंघन करता है वह मेरी आज्ञा का भंग करने वाला द्रोही है वह न तो भक्त है और न वैष्णव ही।' अर्थात् भगवद्भक्त शास्त्र मर्यादा नहीं तोड़ते। जो अभिमानी हैं पाखंडी हैं वे ही शास्त्रों की अवहेलना करते हैं ऐसेही पामरोंके लिये कहा गया है कि—

न शृएवन्ति हितं वाक्यं शास्त्रवाक्यं कदाऽपि च।
आत्म संभावितास्तब्धाः मूढाः पंडितमानिनः॥
एते चान्ये च बहवः पापिष्ठाः धर्मवर्जिताः॥
गच्छन्ति यममार्गे हि रोदमाना दिवानिशिम्॥

(गरुड़पुराण, ४। ११। १२)

श्रुतं पुराणं न च पूजितो ज्ञो—
देहिन् क्वचिन्निस्तरयत्वया कृतम्॥

(गरुड़पुराण २। ३६)

जो हित करने वाले शास्त्र वाक्यों को कभी नहीं सुनते हैं ऐसे अभिमानी, जड, मूढ़ और अपने को पंडित मानने वाले पापी धर्महीन रात-दिन रोते हुए यममार्ग में जाते हैं। वहाँ

यमदूत कहते हैं कि - हे आत्मा ! तूने न तो पुराण सुने और न भगवान् की पूजा की तब नरक से तेरा निस्तार कैसे हो सकता है ?

आजकल कितने महाशय कहा करते हैं कि कलियुग में तो श्रीरामनाम जप ही प्रधान हैं फिर कंठी तिलक लेने से क्या काम ? तप्तमुद्रा की छाप लेने मे क्या प्रयोजन ? सद्गुरु के शरण जाकर श्रीवैष्णवी दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता ? परन्तु उन बिचारों को इतना भी मालूम नहीं है कि जब तक हम श्रीसद्गुरु की कृपा द्वारा पंचसंस्कार प्राप्तकर भगवच्छरण नहीं हो जाते तब तक—

न तावदधिकारोऽस्ति ममाराधन कर्मणि ।
नाधिकारोऽर्चने यावन्मोक्षाशा विद्यतेकुतः ॥
(बृ० ब्र० सं० १ पा० २ अ० ८२)

नादीक्षितः प्रकुर्वीत विष्णोराराधन क्रियाम् ।
श्रौतं वा यदिवास्मार्तं दिव्यागममथापि वा ॥
(बृ० हारीत स्मृति ११ । २४०)

भगवान् आज्ञा देते हैं कि अदीक्षित मनुष्य को हमारे आराधन कर्म में अधिकार ही नहीं है । और बिना मेरी सेवा पूजा किये ही मोक्ष की आशा करना भी व्यर्थ है ।' अदीक्षित मनुष्य भगवान् की आराधन क्रिया वैदिक, स्मार्त अथवा पंचरात्र किसी भी पद्धति से न करे । शास्त्रकार भक्तों का लक्षण बतलाते है कि—

अर्थपंचकतत्वज्ञाः पञ्चसंस्कार संस्कृताः ।
आकारत्रय सम्पन्नास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥

—नारद पंचरात्र,

"अर्थपञ्चक के तत्त्वों को जानने वाले, श्रीवैष्णवी दीक्षा के पांचों संस्कारों से संस्कृत और 'अनन्य भोग्यत्व,' 'अनन्य शेषत्व' और 'अनन्य शरण्यत्व' इन तीनों अकारों के रहस्य को समझने वाले भागवत उत्तम भक्त हैं" प्रत्येक नाम जापकों को उचित है कि इस शास्त्रीय मर्यादा का पालन करते हुए नाम स्मरण करें अन्यथा श्रुति शास्त्र निन्दा और गुरु अवज्ञा स्वरूप दो भगवन्नामापराध के भाजन बनना पड़ेगा।

यदि कोई यह शङ्का करे कि वेद शास्त्रों ने तो विभिन्न मत भेदों का वर्णन किया है, ऐसी अवस्था में वेद शास्त्रों का प्रमाण कैसे माना जाय ? और उनकी अनेकधा आज्ञाओं का पालन कहाँतक किया जाय? इसका उत्तर यह है कि जैसे राजकीय कानून व्यक्ति देश-समाज और प्रान्त भेदों से अनेक प्रकार के होते हुए भी सब कोई अपनी-अपनी मर्यादानुकूल उसका पालन करते हैं और जिसका पालन करने न करने से उनका कोई हित अनहित नहीं होता उसका विरोध अथवा निन्दा भी नहीं करते वैसे ही शास्त्र और वेदों की विभिन्न मर्यादाओं को प्रत्येक धार्मिक पुरुष अपने धर्म और सम्प्रदायानुकूल पालन करते हुये भी अन्य धर्म और सम्प्रदायों का विरोध एवं निन्दा न करके 'स्वे-स्वे कर्मणि संसिद्धिः' प्राप्त कर

सकते हैं। वेद शास्त्रों की विभिन्न मर्यादाओं से 'हंसो यथा-क्षीरमिवाम्बुमध्यात्' न्याय से सारभूत शुद्ध सात्विक भगवदा-राधन प्रतिपादक वचनों का आश्रय लेकर भगवन्नाम कीर्तन के अनन्य अनुरागी बन जाना और भगवद्धर्ममें दीक्षित होकर अपना श्रेय साधना प्राणी मात्र का परम कर्तब्य है।

सब कर मत खगनायक एहू। करिय रामपद पंकज नेहू॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू॥

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।
सुभग सरोरुह लोचन, सुठि सुन्दर स्याम॥ १॥
सिय-समेत सोहत सदा छवि अमित अनंग॥
भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषंग॥२॥
बलिपूजा चाहत नहीं, चाहत एक प्रीति।
सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति॥ ३॥
देहि सकल सुख, दुख दहै, आरत-जन-बंधु।
गुन गहि, अघ-औगुन हरै अस करुनासिंधु॥४॥
देस-काल-पूरन सदा बद वेद पुरान।
सबको प्रभु, सबमें बसै, सबकी गति जान॥५॥
को करि कोटिक कामना, पूजै बहु देव।
तुलसीदास तेहि सेइये, संकर जेहि सेव॥६॥

इति श्रीदशनामापराधे श्रुति शास्त्र निन्दा वर्णन नाम चतुर्थ अपराधः॥ ४॥

पांचवां अपराध

* नाम महिमा को झूठी समझना *

मूल 'तथार्थं वादो हरि नाम्नि कल्पनम्'

भगवन्नाम की शास्त्रों ने अतुलनीय महिमा गाई है। कलियुग में तो समस्त पापों को प्रक्षालन करने का एकमात्र साधन भगवन्नाम ही कहा गया है।

सुगमं तु भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी।
तथापि नरकं यान्ति धिग्धिगस्तु नराधमान्॥

(गरुड़पुराण १।११)

'भगवन्नाम स्मरण अत्यन्त सुगम है और जीभ भी अपने वश की है फिर भी जो लोग भगवन्नाम न जपकर नरक में जाते हैं उन अधम मनुष्यों को वारम्वार धिक्कार है।' इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि भगवन्नाम जापक कभी नरक में नहीं जाता। परन्तु ऐसे प्रभावशाली प्रभु नाम की महिमा को यथार्थ न मानकर केवल अर्थवाद (बड़ाई मात्र) समझता है वह पापी भगवन्नामापराधी है। क्योंकि ऐसा भाव रखने से भगवन्नाम में अविश्वास प्रकट होता है जो "संशयात्मा विनश्यति" सिद्धान्तानुसार आत्मपतन का मूल

कारण है। "न अयं हि चातुर्मास्य याजिनः सुकृतं" तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते तथामुत्रपुण्यचितो लोकः क्षीयते" इन दोनों श्रुतियों में परस्पर बिरोध होने से पहला वाक्य अर्थवाद है परन्तु हरि नाममें तो ऐसाहै ही नहीं भगवन्नामका माहात्म्य श्रीमद्भागवत में भली-भांति वर्णित है। अजामिल का प्रसंग तो और भी महत्व का है। यमदूतों ने भगवन्नाम स्मरण करने पर भी अजामिल को पापी ठहराकर यमपुर ले जाने की ठानी। परन्तु भगवत्पार्षदों ने उनकी अज्ञानता पर हँसकर कहा कि—

यस्यांके शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृत्तः।
स्वयं धर्ममधर्मं वा नहि वेद यथा पशुः॥ ५ ॥
अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम्।
यत्रादण्डयेस्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा॥ २ ॥

(भाग० ६। २। २-५)

"अहो! अत्यंत दुःख का विषय है कि धर्मराज के सभासद भी अधर्म का आश्रय लेकर निरपराधी को भी अपराधी ठहराकर दण्ड का विधान करते हैं। जिसकी गोद में मत्था रखकर प्रजा निर्द्वन्द सोती हो वही स्वयं पशुवत् धर्म-अधर्म कुछ भी नहीं समझते हैं तब प्रजा किसकी शरण जाय? सुनो!

अयं हि कृत निर्वेशो जन्मकोटयंहसामपि।
यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्यनं हरेः॥

(भाग० ३। २। ७)

'इसके करोड़ों जन्मों के पापों का भली-भांति मार्जन हो गया, क्योंकि इसने विवश होकरके भी परम कल्याणदायक भगवन्नाम का उच्चारण किया है।' यदि कहो कि इसने तो अनन्त पाप किये हैं यह भला केवल भगवन्नाम लेने मात्र से कैसे शुद्ध हो सकता है उसका उत्तर यह है कि—

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥
न निष्कृतैरुदितै ब्र्ह्मवादिभि-
स्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः॥
यथा हरेर्नाम पदैरुदा हृतै-
स्तदुत्तमश्लोक गुणोपलंभकम्॥
(भाग० ६।२।१०-११)

'समस्त पापियों के लिये यही एकमात्र पापों का नाशक प्रबल साधन है। क्योंकि भगवन्नाम लेने से पापियों की बुद्धि भी भगवत्परायण बन जाती है। वेद तत्त्वज्ञ महात्माओं ने निर्णय करके यह कहा है कि पापी मनुष्य व्रत-यज्ञ-तीर्थादि करने से ऐसा पवित्र नहीं होता जैसा कि भगवद्गुणों का उत्तम ज्ञान कराने वाले श्रीहरि नाम से पवित्र हो सकता है।' यदि कहो कि इसने तो प्रेम पूर्वक भगवन्नाम उच्चारण नहीं किया है अपने पुत्रका नाम लिया है, तो भी यह पवित्र है क्योंकि—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेववा ।
वैकुण्ठ नाम ग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥
पतित स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः ।
हरिरित्यवशेनाह,पुमान्नार्हति यातनाम् ॥

(भाग० ६ । २ । १४ १५)

किसी का नाम लेते हुए हँसी उड़ाते हुए, किसी बात की पूर्ति करते हुए, किसी का अपमान करते हुए भी यदि भगवन्नाम का उच्चारण हो जाय तो भी उसको समस्त पापों का नाशक समझा गया है । गिरते पड़ते, मार्ग भूलने पर, कोई अंग टूटने पर, सर्पादि जन्तु काटने पर, अग्नि आदि से जलने अथवा ज्वर आने पर किसी प्रकार से 'मार खाने पर, यदि कोई विवश होकरके भी भगवन्नाम का उच्चारण करता है तो उसे यम यातना नहीं भोगनी पड़ती ।'

भगवत्पार्षदों के वचनों से हारकर अन्त में यमदूतों को मुँहकी खानी पड़ी और अजामिल को यमपाश से मुक्तकर चल देना पड़ा, यमपुरी में जाकर यमराजा से समस्त वृत्तान्त निवेदन करने पर धर्मराजा ने भी कहा कि—

दूताः श्रृणुध्वंमम शासनंध्रुवं-
सदैव माङ्गल्यकरं सुखावहम् ।
स्मरन्ति ये राघव नाम निर्मलं-
न तत्रयात्रा भवतां सुखावहा ॥

एतानानेव लोकेऽस्मिन्पुंसांधर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः ॥

(भाग ६ । ३ । २२)

हे दूतो ! मेरा अटल सिद्धान्त सुनो ! जो मंगल निधान सुखदायक निर्मल भगवन्नाम का स्मरण करते हों उनके पास भूलकर भी मत जाना क्योंकि वह यात्रा तुम्हें सुख देने वाली न होगी। संसार में मनुष्यों के वास्ते यही परमधर्म माना गया है कि भगवन्नाम स्मरण कीर्तनादि द्वारा भगवान् की भक्ति करना। अन्य शास्त्र और पुराणों में भी कहा है—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धःपरिकरस्तेन मोक्षायगमनं प्रति ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञ क्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्योवन्देतमच्युतम् ॥
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहस्त्रस्तैर्मृगैरिव ॥

(भाग० श्रीधरीटीका अजामिलोपाख्यान)

एक वार भी जिसने भगवान का श्रीहरि इस दो अक्षर का नाम उच्चारण किया उसने मानो मोक्षपथ में चलने के लिये कमर कस ली है, ऐसा ही समझना चाहिये । जिसके स्मरण और नामोच्चारण से तप·यज्ञादि क्रियाओं की न्यूनता पूर्ण हो जाती है उस अच्युत भगवान् की मैं बन्दना करता हूं।

विवश होकर के भी भगवान् का नामकीर्तन करने पर सिंह की गर्जना से जैसे हिरन भाग जाते हैं वैसे ही मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। यथार्थ बात तो यह है कि—

हरे नाम्निश्च या शक्तिः पाप निर्हरणे द्विज।
तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी जनः॥
(गरुड़पुराण ८। १५)

पाप नष्ट करने की महान् शक्ति जितनी भगवन्नाम में हैं उतना पाप करने का सामर्थ्य तो पापी मनुष्य में है ही नहीं।' तभी तो कहा है—

मन्त्र महामणि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भालके॥

ऐसे प्रबल प्रतापी नाम का उच्चारण करने से गज, गणिका, यवन अजामिल और बड़े बड़े पापी भी तर गये हैं। फिर भी उसकी महिमा को यथार्थ न समझकर बड़ाई मात्र समझना अवश्य ही घोर पाप है। यदि कहो कि इतना प्रताप रहते हुये भी सभी नाम जापकों को शुद्ध और सुखी क्यों नहीं देखते हैं? उसका उत्तर यह है कि नाम रटते हुये भी नामापराधों से न बचने के कारण उनका नाम जप अपराध मार्जन करने में ही लग जाता है, जब तब एक अपराध का मार्जन करते हैं तब तक दूसरा अपराध हो जाता है तब फिर नाम जप उसके मार्जन में लग जाता है इस प्रकार उन्हें यथार्थ नाम जप का आनन्द और प्रभाव नहीं मिलता। इसलिये

नामापराध से बचकर नाम जप करने पर ही यथार्थ सुखका अनुभव हो सकता है सच ही है—

राम नाम सब कोइ रटे, ठग ठाकुर अरु चोर।
ध्रुव प्रहलाद तरि गये, सो रटनो कछु और॥

नाम में विश्वास ही सर्व प्रधान है। "कौनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासू" यह अटल सिद्धान्त है। अर्थवाद मानने पर अविश्वास की जड़ पक्की जम जाती है और विश्वास हीन मनुष्य नष्ट हो जाता है इसलिये प्रत्येक भक्तों को इस भगवदाज्ञा का सदा स्मरण रखना चाहिये।

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोको न परो नसुखं संशयात्मनः॥
(गीता० ४। ४०)

नाम राम को कल्पतरु, कलि कल्याण निवास।
जो सुमिरत भयो भांगते, तुलसी तुलसीदास॥
'तुलसी' सीतानाथ को, दृढ़ राखहु विश्वास।
कबहूँ बिगरत ना सुने, रामचन्द्र के दास॥
कृपण देई पांइय परयो, बिनु साधे सिधि होइ।
'तुलसी' सुमिरत राम के जोइ कीजै शुभ होइ॥

इति श्रीदशनामापराधे अर्थवाद कल्पना वर्णन नाम पंचम अपराधः॥ ५॥

छठा अपराध

❋ नाम के बल पर पाप करना ❋

मूल—नाम्नो बलाद्यस्य हि पापबुद्धि
न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ।

जे नर नाम प्रताप बल, करत दोष नित आप ।
बज्रलेप ह्वै जायँ ते, अमिट सुदुष्कर पाप ॥

सर्व धर्मबहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा ।
मुच्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥

(वैशम्पायन संहिता)

परदाररतःवाऽपि परापकृतिकारकः ।
संशुद्धो मुक्तिमाप्नोति हरेर्नामानुकीर्तनात ॥

(मत्स्य पुराण)

'समस्त धर्मों से रहित और सभी महापापों को करने वाला भी भगवन्नाम संकीर्तन से पापमुक्त होजाता है । परनारियों में आसक्त और पराई हानि करने वाला पापी भी श्री-हरिनाम संकीर्तन से परम शुद्ध होकर मुक्ति प्राप्तकर लेता है" भगवन्नामका कुछ ऐसा ही विलक्षण प्रभाव है तभी तो पापियों को निर्भय करते हुए शास्त्र कहते हैं कि—

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः ।
गोविन्दनाम मेघोघैर्नश्यते नीर बिन्दुभिः ॥

(गरुड़पुराण)

हे मनुष्यो ! प्रचंड पापों की दहकती हुई ज्वालाओं को देखकर भय मत करो, भगवन्नाम के संतापहारी मेघ अपनी जलधाराओं से अवश्य ही उन्हें ठंडी कर देंगे।

भगवन्नाम का ऐसा ही विलक्षण प्रभाव है परन्तु उसका उपयोग पापों को नष्ट करके भगवत्प्रेम बढ़ानेमें ही होना चाहिये। यद्यपि धन समस्त आर्थिक पीडाओं को नाश करने वाला है परन्तु उसका दुरुपयोग करने पर मनुष्य और भी संकटों में फँसता है। जबतक विशेष धन रहता है तबतक धन देकर अपराधमुक्त होता है परन्तु फिर भी अपराध करने पर उपार्जित धन भी अपराधों से छूटने में ही व्यय होजाता है। आजकल अधिकतर धनी और जमीनदार जरा-जरासी बात पर झगड़ा करके कहते हैं कि "क्या है हमारा खेत और गहने बिक जाय तो बिक जाय परन्तु उसको तो कहीं का रहने न दूंगा।" अन्त में मामला बढ़ता है और निरर्थक धन व्यय करना पड़ता है। ऐसे-ऐसे दो चार मामले होजाने पर हाथी, घोड़ा, पालकी और मोटरों पर चलने वाले बाबू साहबों को पैदल पाँव घसीटना पड़ता है। फिर अपने किये पर पश्चाताप होता है परन्तु बाजी हाथ नहीं लगती। यही बात यहाँ भी समझना चाहिये, भगवन्नाम भक्तों का पारमार्थिक धन है,

इसका उपार्जन करने वाले जापकों को 'अरे जरा सा झूठ बोले अथवा चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि पाप किया तो क्या हुआ ? एकबार भगवान् का नाम लेलेंगे सब नाश हो जायगा।' ऐसा विचार भूलकर भी न रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से भगवन्नाम जैसा अनमोल रत्न पाप उपार्जन करने में ही खर्च हो जायगा। दवा का उपयोग रोग नाश करने के लिये होता है, परन्तु जो लोग रोग बढ़ाने के लिये दवा खाते हैं उनको सिवा मरने के और कुछ भी हाथ नहीं लगता। उसी प्रकार नाम के प्रताप से पापी से पापी भी परमपद को प्राप्त हो जाते हैं परन्तु जो लोग जान बूझकर भगवन्नाम की दुहाई देकर पाप करने में प्रवृत्त होते हैं उनका कहीं निस्तार नहीं होता। पहले के सञ्चित, प्रारब्ध और अज्ञतावश किये क्रियमाण पाप भी भगवन्नाम लेने से निस्संदेह नष्ट हो जाते हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भगवन्नाम जापकों को पाप करने की छूट मिल जाती है। हम दवा भी खाते रहेंगे और कुपथ्य भी करते रहेंगे तो स्वयं धन्वन्तरि भगवान् भी हमें रोग मुक्त न कर सकेंगे, उसी प्रकार हम नाम भी जपते रहेंगे और पाप भी करते रहेंगे तो स्वयं यमराज भी हमें शुद्ध न कर सकेंगे। ऐसे पापी नामानुरागी नहीं हैं परन्तु नाम महिमा का दुरुपयोग कर भगवन्नाम की अपरिमित शक्ति को व्यर्थ में नष्ट कर देने वाले दुरात्मा हैं। ऐसे लोगों को देखकर दूसरे लोग भी 'देखिये ! अमुक भक्त की लीला ! देखिये अमुक

कीर्तनकार का पाप' कहकर भगवन्नाम के प्रति अश्रद्धा प्रकट करने लगते हैं। फलतः अनन्य नामानुरागी सच्चे सन्तों को भी उसी पाखंडी का चरित्र सुनाकर लोग अपमान कर बैठते हैं। अरे क्या रखा है भगवन्नाम में? अमुक मनुष्य इतने दिनों से भजन करता है अभी तक पाप करना नहीं छूटा' ऐसा कहकर भगवन्नाम की उपेक्षा अथवा निन्दा करने लगते हैं। तो कितने लोग ज्ञान और कर्म की दुहाई देते हुये श्रीहरि नाम को गौण अथवा मन्द साधन बतलाकर जनता को भगवन्नाम जप से विमुख अथवा अश्रद्धालु बना देते हैं। यदि हम इन अपराधों से बचकर नामकीर्तन करें तो भगवन्नाम तो क्या उसका आभास मात्र भी हमारे कल्याण साधन के लिये पर्याप्त है -

प्रोद्यन्नन्तः करणकुहरे हन्तयन्नामभानो-
रामासोऽपि क्षयपति महापातक ध्वान्तराशिम् ॥

(हरिभक्तिरसामृत सिंधु)

आश्चर्य है कि-जिसके नामरूपी सूर्य का आभास भी अन्तःकरण के अनन्त महापाप रूपी अन्धकार की राशियों को नष्ट कर देता है।

दैवाच्छूकर शावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो-
हारामेण हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पँस्तनुं त्यक्तवान्।
तीर्णो गोष्पदमिव भवार्णव महोनाम्नः प्रभावात्पुनः-
किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥

संयोगवश एक बूढ़े मुसलमान को सुअर के बच्चे ने गड्ढे में ढकेल दिया उस समय पृथ्वी पर गिरते हुए "हराम ने मुझे मारा" कहकर उसने अपना देह छोड़ दिया। वह भी भगवन्नाम के प्रभाव से भवसागर को गोपद के समान तर गया, फिर यदि कोई प्रेमपूर्वक भगवन्नाम स्मरण कर भगवद्धाम में चला जाय तो क्या आश्चर्य है ?

भाव कुभाव अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिशि दशहूँ ॥

इस श्लोक में "यमै र्हि शुद्धि न विद्यते" बहुवचन का प्रयोग है, उसका तात्पर्य यह है कि जैसे कुपथ्य करने वाले मनमुखी रोगी को संसार भरके वैद्य, डाक्टर, हकीम रोगमुक्त स्वस्थ नहीं बना सकते हैं, वैसे ही नाम के बल पर पाप करने वाले नामापराधी को अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के यमराजा एकत्र मिलकर शुद्ध करना चाहें तो भी शुद्ध नहीं हो सकता। इसलिये ऐसे महापराध से सर्वदा बचना चाहिए। भगवन्नामापराध भगवदपराध से भी बढकर है और एक भगवन्नामापराधी समस्त अपराधियों का शिरोमणि है। यही कारण है कि भगवन्नाम के बल पर पाप करने वाले को शुद्ध करने का यथार्थ साधन यमराजाओं के पास भी नहीं है।

यदि कोई यह शंका करे कि 'जब अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के यमराजा गण भी भगवन्नामापराधीको शुद्ध नहीं कर सकते तब क्या उसके उद्धार का कोई मार्ग है ही नहीं ? इसका उत्तर यह है कि नाम महिमा सुनकर जो भगवन्नाम का आश्रय लेता

है उसके पाप तो स्वयं नष्ट होजाते हैं, उन्हें कोई प्रयास भी नहीं करना पड़ता, सूर्योदय होते ही अन्धकार का नष्ट होजाना स्वाभाविक है परन्तु जो उल्लू की भांति सूर्य के उदय होने पर भी अंधेरा ही ढूंढा करते हैं उन्हें अंधकार मुक्त कौन कर सकता है ? वैसे ही भगवन्नाम रूपी सूर्य के रहते हुए भी—

नाममाहात्म्यं ज्ञात्वा तत्बलात् हि निश्चये यस्यपाप-बुद्धिर्नतुप्रमादतः तस्य साक्षान्नामापराधिनः सर्वाश्रयभूतपरम मंगल भगवन्नामधेयं साधनीकृत्य निकृष्ट विषयेषु फलबुद्धे-रनुपमेयपापिनो यमैर्हिशुद्धि न विद्यते'

(नामापराध भाष्य)

नाम महात्म्य जानकर प्रमादसे नहीं परन्तु नामके बल से जो पाप करता है उस साक्षात् नामापराधी की, समस्त जगत के आश्रयभूत परम मंगल भगवन्नाम लेकर निकृष्ट पाप करने वाले अनुपमेय (बेजोड़) पापी की अनन्त यमराजाओं द्वारा भी शुद्धि नहीं हो सकती' यदि ऐसा पापी अपने पापों का पश्चा-ताप करता हुआ शुद्ध होना चाहे तो—

श्रीरामनामस्मरणरहितेनानुष्ठित कर्माद्युपायस्य चिर-कालसाध्यत्वात् विघ्नबाहुल्यान्नाम्नः सापेक्षितत्वाच्चा-सिद्धेः भगवन्नामव्यतिरिक्तैः साधनान्तरैः शुद्धिर्न भवति। यथागुर्वापराधिनं तत्कृपां विना।'

(नामापराध भाष्य)

श्रीरामनाम स्मरण बिना कर्म ज्ञान-योग, भक्ति आदि चिरकाल में सिद्ध होने वाले, विघ्न की बहुलता वाले, और नाम के आश्रय बिना फल देने में असमर्थ अन्य साधनों द्वारा भगवन्नाम को छोड़- कर भगवन्नामापराधी कदापि शुद्ध नहीं हो सकता। जैसे गुरु का अपराध करने वाला श्रीगुरु कृपा से ही शुद्ध होता है वैसे भगवन्नामापराधी भी भगवन्नाम का आर्त होकर स्मरण करने पर भगवन्नाम की दया से ही शुद्ध हो सकता है। यमराजा और साधनान्तर उसे शुद्ध करना चाहें तो करोड़ों कल्प पर्यन्त अनन्त उपायों के करने पर भी शुद्ध नहीं कर सकते केवल भगवन्नाम ही उसे शुद्ध कर सकता है, भगवन्नाम से श्रेष्ठ जब संसार में कोई है ही नहीं और सब भगवन्नाम की कृपा से ही अपना भला मनाते हैं तब भगव-न्नामापराधी की भगवन्नाम बिना और कौन रक्षा कर सकता है ? इसलिये ऐसे पापियों को भी सर्व सुहृद भगवन्नाम के शरण जाकर अपना उद्धार करना चाहिये, स्मरण रहे-भगव-न्नाम पापों से छुड़ाकर भगवत्प्रेम प्रदान करता है जो भगव-त्प्राप्ति का एकमात्र साधन है, उसे सांसारिक विषय भोगों में लगाकर अपना जीवन नष्ट न करना चाहिये। नामजप के बल पर पाप करने वाले नामानुरागी नहीं परन्तु पापानुरागी ही हैं, "न ते विष्णुप्रसादस्य भाजनाः दाम्भिकाः जना" ऐसे पापी पाखंडी जीव भगवत्कृपा के पात्र कभी नहीं हो सकते।

इति दशनामापराधे षष्ठम अपराधः ॥ ६ ॥

सातवां अपराध

⁕ समान्य धर्मों के समान भगवन्नाम समझना ⁕

धर्मव्रतत्याग हुतादि सर्व शुभ क्रिया साम्यमपि प्रमादः।

धर्म-व्रत-त्याग-यज्ञादि शुभ क्रियाओं की भाँति भगवन्नाम जप भी एक कर्म है, उसमें कुछ विशेषता नहीं है, ऐसा भाव रखने वाला भगवन्नामापराधी हैं। समस्त शुभ क्रियाओं के कर्ताओं से भगवद्भक्त परम श्रेष्ठ है, यह बात समस्त शास्त्रकारों ने एक स्वर से स्वीकार की है, फिर भी भगवन्नाम जप को अन्यसाधनों का समकक्ष मानना कितनी भारी भूल है ! सूर्य को भला खद्योत (जुगनू) की उपमा कैसे दी जा सकती है ? जैसे सर्वेश्वर प्रभु की समानता कोई नहीं कर सकता वैसे ही भगवन्नाम-धाम-रूप और लीला की कोई समानता नहीं कर सकता। इसीलिये तो श्रुति कहती है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

(श्वेता० ४। १६)

पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा परा गतिः।

(कठो० १। ३। ११)

'जिसके नाम की अनन्त महिमा और यश है उस परमे-

श्वर की समानता कोई नहीं कर सकता है। परम पुरुष परमात्मा से पर कोई नहीं है वही ऐश्वर्य की सीमा और परमगति है।' इन वेद वाक्यों द्वारा भगवन्नाम की महिमा सुनते और समझते हुए भी भगवन्नाम की अन्य साधनों के साथ तुलना करना अवश्य ही अपराध है। गीता में भी—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन चेज्यया ।
शक्य एवं विधोद्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्ययाशक्य अहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥

(गीता० ११ । ५३-५४)

हे अर्जुन ! वेद-तप-दान और यज्ञादि कर्मों द्वारा भी मैं इस प्रकार नहीं दीख सकता जिस प्रकार की तुमने मुझको देखा है। हे परंतप ! केवल भक्ति द्वारा ही मुझको इस प्रकार देखना जानना और प्रेम द्वारा ही मुझमें प्रवेश करना संभव है। श्रीमद्भागवत में भी—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्याय तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

(भाग० ११ । १४ । २०)

जिस प्रकार मेरी भक्ति मुझे दृढ़तया वश करती है उस प्रकार योग-ज्ञान-धर्म-स्वाध्याय-तप और त्याग मुझको वश नहीं कर सकते।

कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम् ।
श्रेष्ठा पञ्चविधामुक्ते हरिभक्तिर्गरीयसी ॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि ।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त, कृ० १७ । ८-६)

भगवद्भक्ति और भगवद्दास्यता समस्त वरदानों में श्रेष्ठ वरदान है, पाँचों प्रकार की मुक्तियों से भगवद्भक्ति ही परम श्रेष्ठ है । ब्रह्मत्व, देवत्व-इन्द्रत्व-अमरत्व अमृत और सिद्धिलाभ से भी भगवान् की दास्यता दुर्लभ है। सच्चे भगवद्भक्त तो भुक्ति मुक्ति की परवाह भी नहीं रखते। मुक्ति तो उनके चरणों पर लौटती रहती है।

यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्द सान्द्रा-
विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्य लक्ष्मीः ॥

उपनिषद् भी घोषणा करते हैं कि—

सर्वोपायान् परित्यज्य भक्तिमाश्रय, भक्तिनिष्ठोभव।

श्रीराम चरित मानस भी—

जाते वेगि द्रवौं मे भाई । सो मम भक्ति भक्तसुखदाई ।
सो स्वतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥

वह भक्ति 'तन्नामग्रहणादिभिः' 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः' द्वारा ही होती है इसलिए भगवन्नाम से श्रेष्ठ अथवा समान दूसरा कोई साधन नहीं है।

हरिभक्तिमहादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः ।
भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिका तदनुव्रताः ॥

—नारद पंचरात्र

महाशक्तिमान् भगवद्भक्ति की मुक्ति-भुक्ति और समस्त अद्भुत सिद्धियां दासो हैं। उसके इशारे पर नाचने वाली हैं— इसीलिए तो शास्त्र मुक्तकंठ से कहते हैं—

यस्यभक्ति र्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।
विक्रीडितोऽमृताम्भोधौ किंक्षुद्रैः खातकोदकैः ॥

(भाग० ६ । १२ । २२)

जिसको परम कल्याण के स्वामी श्रीहरि के चरणों में परमप्रीति है उन आनन्द समुद्र में गोते लगाने वालों को क्षुद्र सांसारिक सुख के मैले गडहों में कैसे आनन्द मिल सकता है ! अर्थात् वे तो प्रभु भजन में ही मग्न रहते हैं।

न नाम सदृशं ज्ञानं न नाम सदृशं व्रतम् ।
न नाम सदृशं ध्यानं न नाम सदृशं फलम् ॥
न नाम सदृशस्त्यागो न नाम सदृशः शमः ।
न नाम सदृशं पुण्यं न नाम सदृशी गतिः ॥

नाम लियो तिन्ह सब लियो, सकल शास्त्र को भेद ।
विना नाम नरकन्ह गये, पढ़ि पढ़ि चारयों बेद ॥

इति श्रीदशनामापराधे सप्तम अपराधः ॥७॥

आठवां अपराध

* श्रद्धाहीन विमुखों को नामोपदेश करना *

मूल—अश्रद्दधाने विमुखेप्यश्रृण्वति,

यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ॥

अश्रद्धालु, भगवद्विमुखों और सुनना न चाहते हों ऐसे पामर जीवों को भी नाम की महिमा सुनाना कल्याण स्वरूप भगवन्नाम का अपराध है।

यदि कोई शङ्का करे कि उपदेश के विना जीव को कैसे भगवन्नाम में प्रीति होगी? क्योंकि जाने विनु होय नहिं प्रीती' यह सिद्धान्त है, और विना भगवत्प्रीति के जीव का कल्याण कैसे होगा ? उसका उत्तर यह है कि अश्रद्धालु भी यदि भगवद्विमुख न हो अर्थात् नास्तिक न हो उसको भगवत्प्रेम भली भांति दृढ़ होजाय इसलिये उपदेश देना अनुचित नहीं है। इसी प्रकार भगवद्विमुख भी यदि आपके वचनों में विश्वास रखता है श्रद्धाहीन नहीं है तो उसको भी उपदेश देकर भगवन्नाम में एकनिष्ठ बनाने में कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु जो भगद्विमुख है, अश्रद्धालु है और आपका उपदेश सुनना भी नहीं चाहता उसको धन, जमीन. यश अथवा प्रतिष्ठा आदि किसी सांसारिक वस्तु के लोभ में फँसकर निरर्थक उपदेश देना अवश्य

ही भगवन्नामापराध है। क्योंकि हमारा यह कर्तव्य हमें स्वयं भगवन्नाम की श्रद्धा से हीन नास्तिक अथवा पाखंडी सिद्ध करता है। कितने लोग अपना नाम उपदेशक श्रेणी में गिनाने के लिये और जगत की झूठी मान बड़ाई के लिये निरन्तर ऐसा अपराध करते रहते हैं, जनता की मनोवृत्तियों को समझते हुए भी कितने अपनी विद्वता छांटने के लिये प्लेटफार्म पर खड़े हो-होकर उपदेश देते फिरते हैं। कितने कीर्तनकार पैसों के लोभ से दुर्व्यसनी दुराचारी और भगवद्विमुखों के सामने उनके डेरे और घर जाकर उनकी इच्छा न रहने पर भी कीर्तन करके अन्त में उनसे अन्न-वस्त्र-धन आदि मांगते हैं। शुद्ध सात्विक संकीर्तन उन्हें पसंद न आने पर नाना प्रकार के राग रागिणी और मजाकिया वातों द्वारा उनके मनोरंजन की चेष्टा करते हैं। अधिकांश कथाकारों में भी प्रायः यह दुर्गुण पाया जाता है, हमने तो गाँव वालों की इच्छा न रहने पर और लाख मना करते रहने पर भी गले पड़कर कथा प्रारंभ करते भागवती पंडितों को कई जगह देखा है। लोग ऐसे कथक्कड़ और कीर्तनियों से ऊब गये हैं फिर भी वे उनका पिण्ड नहीं छोड़ते, क्या भगवद्भक्ति का तिरस्कार कराने में इन लोगों का कम हाथ है ? फिर भी धार्मिक पुरुष उनको मानना पूजना छोड़ देते हैं तो उन्हें अश्रद्धालु ठहराते हैं। प्रत्येक नामानुरागी को ऐसे अपराध और अपराधियों से बचकर आत्मकल्याण साधना चाहिए।

अश्रद्धालुओं का संसर्ग श्रद्धावान् पुरुष की श्रद्धा भी नष्ट कर देता है। उसको उपदेश देने पर वह श्रद्धाहीन होने से बात मानेगा तो नहीं परन्तु भक्त की बातों का तर्कवाद से खंडन कर भोलेभाले भावुक भक्त के हृदय में भी अश्रद्धा और नाना प्रकार की शंकाओं का बीजारोपण कर देगा। इसीलिए शास्त्र में कहा है कि –

येषां रामप्रियोनास्ति रामेन्यूनत्व दर्शिनाम् ।
द्रष्टव्यं न मुखं तेषां संगतिस्तु कुतस्तराम् ॥

(बाल्मीकीय)

'जिसको भगवान् श्रीराम प्रिय नहीं हैं और जो भगवान् राम में न्यूनता दिखाते हैं, उन पापियों का तो मुँह भी न देखना चाहिए फिर संगति की तो बात ही दूर है।'

संसार ताप शान्त्यर्थं महाविश्वास पूर्वकम् ।
प्रतिकूल जनावासो दावाग्निमिव संत्यजेत् ॥

(बृ० ब्र० सं० ४।१०।६७)

संसार का ताप नष्ट करने के लिए महाविश्वास पूर्वक भगवान् का भजन करते हुए प्रतिकूल (विमुख) मनुष्यों का संग दावाग्नि की भांति परित्याग करना चाहिए। भगवत्विमुख को कितना भी उपदेश दीजिए वह कभी न सुधरेगा, कविकुल तिलक गोस्वामी जी ने ठीक ही कहा है—

वायस पालिय अति अनुरागा। होहि निरामिष कबहुँ कि कागा॥

खलऊ करहिं भल पाई सुसंगू। मिटई न मलिन स्वभाव अभंगू॥

किसी कवि ने भी कहा है कि—

साकट तो सुधरे नहीं, सौ साधुन के संग ।
मुंज डुबोयो गंग में, तोय तंग को तंग ॥
दाग न छूटै नील को, सौ मन साबुन धोय ।
कोटिन जतन प्रबोधिये, कागा हंस न होय ॥

अगर ऐसे अधम को यदि कोई कृपालु कृपा करके उपदेश सुनाने को जाय तो भी—

कथा सुनै नहिं कीरतन, बकै आपनी बाई ।
पापी मानुष परशुराम, औंधे के उठिजाई ॥

उपनिषद् भी आज्ञा देते हैं कि—

नास्तिकाय कृतघ्नाय दुराचार रताय वै ।
मद्भक्ति विमुखायापि शास्त्रगर्तेषु मुह्यते ॥
गुरुभक्ति विहीनाय न दातव्यं कदाचन ।

— मुक्तिकोपनिषद् ४८

श्रीमद्भागवत में भी—

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ।

(भा० ११ । २६ । ३०)

गीता में भी—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥
(१८। ६७)

नास्तिक, कृतघ्न, दुराचारी, भक्तिविमुख, शास्त्रों के वितण्डावाद में फँसे हुये और गुरुद्रोही को यह उपदेश न देना। दांभिक-शठ-नास्तिक-सेवा न करने वाले-अभिमानी और अभक्त को यह न सुनना। जो तपस्या के कष्ट नहीं सह सकता अभक्त सेवा करने में प्रमाद करने वाले एवं मुझसे द्वेष रखने वालों को यह ज्ञान मत कहना।' इस प्रकार प्रत्येक धर्मशास्त्र अश्रद्धालु को उपदेश करने का निषेध करके भगवद्भक्त को प्रभु महिमा सुनाने का महत्व प्रतिपादन करते हैं—

य एतन्ममभक्तेषु संददद्यात्सुपुष्कलम् ।
तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मनः ॥
एतैर्दोषै विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ।
साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिस्याच्छूद्र योषिताम् ॥
(भाग ११ । २६ । २६-३१)

जो यह मेरे भक्तों को सुन्दर ज्ञान भली-भांति प्रदान करता है उस भगवत्तत्त्वदाता भक्त को मैं स्वयं अपना आत्म-समान कर देता हूं। इन दोषोंसे रहित मेरे प्रिय और ब्रह्मण्य पवित्र साधु को भले वे स्त्री या शूद्र ही हों जो उपदेश करता है वह भक्तिमान् होता है।

य इमं परम गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्य प्रियतरो भुवि ॥
(गीता १८ । ६८ । ६९)

जो यह परम गुप्त रहस्य मेरे भक्तों को सुनाता है वह मेरी परमभक्ति प्राप्त कर मुझसे निःसंदेह मिलता है । उससे बढ़कर मेरा प्रियतम दूसरा कोई मनुष्य न है और न हुआ है ।

इसलिये प्रत्येक नामानुरागी संतों का परम कर्तव्य होना चाहिये कि यह भगवन्नाम का माहात्म्य भगवद्‌भक्तों को ही सुनावें । श्रद्धाहीन विमुखों को सुनाकर भगवन्नामापराध का पाप न करें ।

इति श्रीदशनामापराधे, श्रद्धाहीन विमुख जनाय नामोपदेश वर्णन नाम अष्टम अपराधः ॥ ८ ॥

नवम अपराध

* नाममहिमा सुनकर भी श्रद्धाहीन रहना *

मूल—श्रुत्वापि नाम माहात्म्यं यः प्रीति रहितोऽधमः ।

'नाम के माहात्म्य को सुनकर भी नाम में अनन्य प्रीति न करने वाला अधम नामापराधी है।' शास्त्र कहते हैं--

ये-ये प्रयोगास्तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम् ।
तत्सर्वं सिध्यति क्षिप्रं रामनामस्य कीर्तनात् ॥
जगज्जैत्रेकमन्त्रेण रामनाम्नाभि रक्षितम् ।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥
पातालभूतलव्योम चारिणश्छद्मकारिणः ।
न द्रष्टुमभिशक्तास्ते रामनाम्नाभिरक्षितम् ॥

—रामरक्षास्तोत्र)

'तन्त्रशास्त्र में जिन-जिन प्रयोगों का उल्लेख है और उनसे जो जो फल मिलता है वह सब कुछ श्रीरामनामसंकीर्तन से अनायास ही प्राप्त होता है।' जगत् को जीतने वाला एकमात्र महामंत्र श्रीरामनाम से रक्षित कवच जो कोई कण्ठ में धारण करता है उसको समस्त सिद्धियां हस्तगत हो जाती हैं। पाताल पृथिवी और आकाश में रहने वाले कोई भी गुप्तचारी दुष्ट जीव

श्रीरामनाम से रक्षित मनुष्य को टेढ़ी नजरसे देखने में भी समर्थ नहीं है।' इस प्रकार नाम महिमा का श्रवण करके भी जो उसमें विश्वास नहीं करता, नामका प्रेमी नहीं बनता वह अवश्य ही हतभागी है। सन्तों ने कहा है कि—

रहे न जल भरपूर, राम सुयश सुनि रावरो।
तिन आंखिन में धूर, भरि-भरि मूँठी मेलिये।
द्रवै न सलिल सनेह, 'तुलसी' सुनि रघुवीर यश।
ते नयना जनि देह, राम करहु वरु आंधरो॥

—दोहावली

हरिजश सुनकै नैन जो, श्रवै न भरि-भरि वारि।
'परसा' मूँठी धूर की, तिन आंखन में डारि॥

—श्रीपरशुरामदेवजी

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणै र्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदाविकारो नेत्रेजलं गात्ररुहेषुहर्षः॥

(भाग २। ३। २४)

वह हृदय पत्थर के सारभूत वज्र सा कठोर समझना चाहिये, जो श्रीहरिनाम लेते हुए प्रेम से विकल नहीं हो जाता आँखों में आँसू नहीं भर देता, और शरीर में रोमांच नहीं करता।' सच्चे भक्त तो—

जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रस धार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें सियवर का प्यार नहीं॥

वाग्गदद्रवते यस्य चित्तं
हसत्यभीक्ष्णं रुदति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति
(भाग० ११ । १४ । २४)

भगवान् का प्यारा नाम लेते ही प्रेम के आवेग से गला रूँध जाता है, चित द्रवीभूत हो जाता है कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी लोकलज्जा त्याग कर ऊँचे स्वर से गाता हुआ नाचता है, ऐसा भक्त मेरी भक्तिसे सम्पन्न होकर समस्त भुवनों को पवित्र करता है ।' एक सन्त ने क्याही सुन्दर उपदेशदिया है—

रोयो तात मात हूँ को छोटे बडे भ्रातहू को,
पतनी को रोयो मन अहो अकुलाय के ।
आज जाये काल्हि मरे ऐसेहूँ सुतन्ह रोयो,
बेटी और दमादहूँ को रोयो विलखायके ॥
आपने अभाग रोयो दुश्मन के भाग रोयो,
जागि-जागि रात रोयो गयो धन आयके ।
झूँठ ही के रोवने में जनम तूँ गँवायो मूढ़,
कबहूँ न रोयो सियाराम गुण गायके ॥
—श्रीरसिकअलिजी

इस भगवत्प्रेम को पाने के लिये हमें भी कातर स्वर से आर्त होकर प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये कि—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

—श्रीचैतन्य शिक्षाष्टक

आंखों में प्रेमाश्रुओं की धारा बहती हो, कण्ठ गद्गद् हो जाने से वाणी रुक गयी हो, शरीर रोमांचित हो रहा हो ऐसी दशा हे प्रभु ! तुम्हारे नाम रटण करते हुए हमें कब प्राप्त होगी ?'

ऐसे महामहिम भगवन्नाम में प्रेम न करना सचमुच आत्म विनिपात ही है, तभी तो शास्त्र कहते हैं—

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदर कृतोद्यमैः ।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥

(भाग० । ३ । ३१ । ३२)

'जो फिर भी यदि इन्द्रियारामी विषय विलासी अधम मनुष्यों के मार्ग का अनुगमन किया तो उसी विषय सुख को पाने का उद्योग करने वाला मनुष्य पुनः अन्धकारमय भव-जाल में फँस जाता है ।' चक्रवर्ति राजा की राणी यदि अपने पतिका प्रेम त्याग कर दुर्जनों से प्रेम करे तो वह जैसे दण्डय और कुभार्या मानी जाती है वैसे ही भगवन्नाम का परित्याग कर विषयविलासी जीवन विताने वाले पामरों की दशा भी समझ लेनी चाहिए ।

नाम कामतरु परिहरत सेवत कलितरु ढूँढ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूँठ ॥
वारि मथे वरु होय घृत सिकता के वरु तैल ।
विनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल ॥

— दोहावली

भगवन्नाम जापक को देवतान्तर और साधनान्तर का आश्रय सर्वथा त्याग कर एक मात्र नामाश्रयी बन जाना चाहिये क्योंकि सनत्कुमार संहिता में कहा है कि—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा ।
आदित्यादि ग्रहाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥
सर्वेषांत्वं परब्रह्म त्वन्मयं सर्व एवहि ।
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥

इत्यादि प्रमाणों से प्रभुका सर्वैश्वर्य और सामर्थ्य समझते हुये भी दूसरों का निहोरा करना, भक्तों की शान में बट्टा लगाना है। यथार्थतः भगवत्प्रेमी तो कुछ भी नहीं चाहते वे तो कहते हैं—'तुलसी राम भजन को जो फल सो जरि जाऊ" फिर भी उतना न हो सके तो—

'स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर ॥

यह सिद्धान्त दृढ़ मानकर भागवत-धर्म का महत्त्व सुनते समझते रहना चाहिये ऐसा करने से—

ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः।
मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥
भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ।
मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥
(भाग० ११ । २६ । २९-३०)

'जो उस मेरी महिमा को सुनते हैं, गाते हैं, आदरपूर्वक अनुमोदन (प्रसंसा) करते हैं वे मुझमें परायण श्रद्धालु-भक्त मेरी भक्ति पाते हैं। अनन्त सद्गुणसागर सच्चिदानन्द मुझ पर ब्रह्म की भक्ति पाने पर आनन्द का अनुभव करनेवाले भक्त को फिर क्या बाकी रहता है ?'

सन्त शास्त्र सद्गुरु वचन, सुनत न भयो सनेह ।
'प्रेमनिधी' ते कलि धरे, पामर पापी देह ॥
कथा सुनी सत्सङ्ग पुनि, रामचरण रति नाहिं ।
'प्रेमनिधी' हतभागि नर, वृथा जियत जग मांहिं ॥

इति श्रीदशनामापराधे नवम अपराधः॥ ९ ॥

दशम अपराध

मैं और मेरे में फँसे रहना

मूल—अहं ममादिपरमो नाम्नि सोप्यपराधकृत् ।

भगवन्नाम जप करते रहने पर भी अहंकार और ममता का परित्याग न करना नामका अपराध है। अभिमान भक्तिमार्ग का कंटक है, श्रीनारद सूत्र में इसीलिए कहा है कि—

अभिमान दम्भादिकं त्याज्यम् (६४)

गीता में भी प्रभु का उपदेश है कि—

आत्मसंभाविताःस्तब्धाः धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
ममात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय! ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

(गीता १६। १७-१८-१९-२०)

जो अपने बड़प्पन के घमण्ड में रहने वाले, धन, मान और मदमें भूले हुए हैं वे दम्भ से ही नाम-यज्ञ द्वारा अविधि पूर्वक यजन करते हैं। जो अहंकार-बल-घमण्ड-काम-क्रोध और

ममता के वशीभूत होकर दूसरों से द्वेष करते हैं उन ईर्षा करने वाले अधम मनुष्यों को मैं आसुरी योनि में पटकता हूँ। उन अशुभ योनियों में जन्मजन्मान्तर भटकते हुए मूढ़ मनुष्य मुझे न पाकर हे कौन्तेय! वारंवार अधमगति में जाते हैं। इसलिये कहा है—

त्यक्त्वा मोहं च मात्सर्यं वाक्य चैवानृतं तथा ।
इत्थं नाम जपेन्नित्यं रामरूपो भवेन्नरः ॥

(महारामायण)

शान्तो दान्तः क्षमाशीलो ममनामपरायणः ।
तस्य तद्गुण संख्यानं न वक्तुंशक्तिमानहम् ॥

(आदिपुराण)

'मोह मात्सर्य और असत्य भाषण त्यागकर जो प्रभु नाम जपता है वह भगवत्स्वरूप हैं।' शान्त-दान्त क्षमाशील और मेरे नामजापकका गुण-गान करनेमें मैं भी समर्थ नहीं हूं। अब यदि कोई शंका करे कि—

मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम् ।
श्रीरामस्मरणेनैव तत्क्षणान्नश्यते ध्रुवम् ॥

(ब्रह्मरात्र)

सर्वधर्मबहिर्भूतो भुंजानो वा इतस्ततः ।
कदाचिन्नारकं दुःखं नाम वक्ता न पश्यति ॥

(आदिपुराण)

अशेषवासनायुक्तः कामक्रोधपरायणः ।
सपूतः सर्वपापेभ्यो यस्यनाम परंतप ॥
सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैक जल्पकाः ।
सुखेन तां गतिं यांति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः ।

—पद्मपुराण

'मन वचन और शरीर से उपार्जित समस्त पाप भगवन्नाम स्मरण करते ही नष्ट हो जाता है । सर्वधर्म रहित इधर उधर खा लेने वाला भी यदि नाम जापक हो तो नरक का दुःख नहीं देखता। समस्त वासनाओं से पूर्ण, काम-क्रोध परायण भी नाम लेने से पवित्र हो जाता है। सर्वधर्म बहिर्भूत भी यदि भगवन्नाम जापक है तो उस गति को प्राप्तकर लेता है जिस गति को सभी धार्मिक नहीं पाते।' इत्यादि शास्त्रवाक्यों से सिद्ध होता है कि नाम जापक को चारित्र्यशुद्धि का अथवा वासना शुद्धि का प्रयोजन नहीं रहता। तब यह दशम अपराध निरर्थक है ?' उसका उत्तर यह है कि—जैसे कोई धूर्त किसीको अफीम, धतूर आदि नशीली चीज मिलाकर सर्वस्व हरण करता है तब वह राजमार्ग पर लुटे हुए धनके लिए पश्चात्ताप करता हुआ आर्तस्वर से किसी को पुकारता हो तो उसको असहाय समझ कर प्रत्येक सहृदय सज्जन सहायता पहुंचाने को प्रस्तुत हो जाता है। उस समय उसकी जाति कर्म-गुण और दोषों की ओर दृष्टिपात करने का अवसर ही नहीं रहता। उसी प्रकार सांसारिक विषयों में मतवाले मनुष्य कालके कराल

पंजे में फँसकर यमदूतों द्वारा सताए जा रहे हों उस समय वे यदि आर्तिहरण भगवान् का नाम पुकारे तो दयानिधान प्रभु उसके गुण-दोषों को सर्वथा भूलकर प्रपन्नार्तिहारी उसकी सहायता को दौड़ पड़ते हैं। क्योंकि आपकी प्रतिज्ञा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

(गीता, ८।५)

'अन्तकाल में जो मेरा स्मरण करके शरीर का परित्याग करता है वह मेरे भावनास्पद धाम को प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं है" यह 'अन्ते या मतिः सा गतिः' तो सार्वजनिक सिद्धान्त है परन्तु प्रभु का प्यारा भक्त तो—

यदि वातादि दोषेण मद्भक्तो मां विस्मरेत् ।
तर्हि स्मराम्यहं भक्तं नयामिपरमां गतिम् ॥

'यदि वात-पित्त कफ के त्रिदोष में घिरा हुआ भक्त कष्ट पाकर मुझे भूल भी जाय तो मैं उसे याद करके अपने परमधाम में ले जाता हूँ।'

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमऊ मुक्त होय श्रुति गावा ॥
पापिऊ जाकर नाम सुमिरहीं । अति अपार भवसागर तरहीं ॥
काशी मरत जन्तु अवलोकी । जासु नाम बल करऊँ विशोकी ॥

इत्यादि वाक्य मरणकाल में नामोच्चारण करने का विधान करते हैं परन्तु यह तो किसी भाग्यभाजन के पल्ले ही पड़ता है बहुधा तो—

'जनम-जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं॥ चरितार्थ होता है इसीलिये भक्त प्रार्थना करते हैं—

नाथ त्वदीय पद पंकज पिञ्जरान्ते-
अद्यैव मे विशतु मानस राजहंसः।
प्राण प्रयाण समये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

'हे नाथ! अभी से ही हमारा मानस राजहंस आपके चरण पिंजर में जाकर फँस जाय तो अच्छा है, क्योंकि अन्त समय में मरते समय कफ, वात पित्त के उपद्रव में कंठवद्ध हो जाने पर आपका स्मरण कैसे होगा?' इसलिये अभी से समस्त प्रत्यवाय (विघ्न) का परित्याग कर विधिपूर्वक अपराधों से बचकर भगवन्नाम जप में लग जाना चाहिये। ऐसे ही भक्तों के लिये कहा है कि—

दिवारात्रौ च ये भक्ता नाममात्रैक जीविनः।
वैकुण्ठ वासिनस्ते वै तत्र देवाहि साक्षिणः॥
ये स्मरन्ति सकृत्दूताः प्रसंगेनापि केशवम्।
ते विश्वचाखिलं भित्वा याति विष्णोः परं पदम्॥

— माघमाहात्म्य

दिन-रात मन लगाकर भगवन्नाम जप करने वाले भक्त भगवद्धाम निवासी हैं इस बात के तो सभी देव साक्षी हैं। हे दूतो! जो प्रसंगतः एकवार भी प्रेमपूर्वक भगवन्नाम ले लेते

हैं वे भी समस्त ब्रह्माण्ड भेदन कर भगवद्धाम में चले जाते हैं। कितने लोगों का कथन है कि—

कैलाशे रुद्रदेहस्था भुजंगा विष भाजनाः।
असमर्था सुधाभोक्तुं कर्मयोनि बलीयसी ॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ॥

'अर्थात् कैलाश में रुद्र के देह में लटके हुए सर्प विष के पात्र होने से उनके ललाट पर विराजमान सुधांशु चन्द्रमा का अमृतपान नहीं कर सकते, सच है कर्मयोनी प्रधान है। विना भोगे करोड़ों कल्प तक भी कर्म नष्ट नहीं होता' तब विना कर्म नष्ट हुए रामनाम लेते ही मुक्ति कैसे मिल सकती है? उसका उत्तर यह है कि कर्म से ज्ञान और ज्ञान से भक्ति उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। कर्म दूसरे कर्मों द्वारा नष्ट करना चाहें तो अवश्य ही करोड़ों कल्प लग जायेंगे परन्तु—

कर्माधीनं जगत्सर्वं विष्णुना निर्मितं पुरा।
तत्कर्म केशवाधीनं रामनाम्नैव नश्यति ॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिच्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

—उपनिषद्

इन शास्त्र वाक्यों से भगवन्नाम और भगवद्दर्शनों द्वारा कर्म का समूल नष्ट होना ही सिद्ध होता है, तभी गोस्वामीजी ने कहा है—

मंत्रमहामणि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भालके ॥
सन्मुख होई जीव मोहिं जबहीं। जन्म कोटि अघ नाशौं तबहीं ॥

प्रभु सब कर सकते हैं, क्योंकि वे सर्व शक्तिमान हैं। जैसे कोई दरिद्री अपने परिश्रम से करोड़ों रुपये कमाकर सुखी नहीं बन सकता परन्तु कोई श्रीमान् कृपा करके उसे राज्य अथवा धन दे दे तो उसका दारिद्रय क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है, वैसे ही करुणासिंधु प्रभु चाहें तो क्षणमात्र में कर्म--बन्धन तोड़ कर मोक्ष सुख दे सकते हैं, अर्थात् भगवन्नाम में वह अप्रतिहत प्रभाव है जिसके बल पर "भाविऊ मेटि सकहिं त्रिपुरारि" सिद्ध हो चुका है। अतः कर्म क्षीण होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार भगवन्नाम का अप्रतिम प्रभाव समझ कर अनन्य भाव रखकर एकमात्र नामनिष्ठ होना ही हमारा कर्तव्य है, आगे का कार्य तो प्रभु स्वयं सर्वदा सम्हालने के लिए उद्यत हैं

मेरा तेरा त्याग कर, भजन करो दिनरात।
अन्त समय मनभायगी 'प्रेमनिधी की बात ॥
धन यौवन उड़ जायंगे, जैसे उड़त कपूर।
मन मूरख गोविन्द भज, क्यों चाटत जग धूर ॥

इति श्रीदशनामापराधे अहं ममतादोष वर्णनो
नाम दशम अपराधः ॥१०॥

अन्तिम उपदेश

एवं नारद ! शंकरेण कृपया मह्यं मुनीनां पुरः-
प्रोक्तं नाम सुखावहं भगवतो वर्ज्यं सदायत्नतः ।
ये ज्ञात्वापि न वर्जयन्ति सहसा नामापराधान्दश-
क्रुद्धां मातरमप्यभोजनपरां खिद्यन्ति ते बालवत् ॥

श्रीसनत्कुमारजी कहते हैं कि—

हे नारद ! इस प्रकार मुनियों की सभा में श्रीशंकरजी ने भगवन्नाम जापकों द्वारा त्याज्य दशनामापराधों का सुखप्रद उपदेश मुझे दिया । जो इनको जानते हुए भी नहीं छोड़ते वे भोजन देती हुई माता को हठवश क्रुद्ध करने वाले बालकों की भाँति दुराग्रही महाकष्ट पाते हैं । तात्पर्य यह है कि—

एवं नामापराधदशकं विज्ञाय तद्वर्जनपूर्वकं भगवतो नामस्मरणं यथोक्तं सुखावहं । काम क्रोधादि त्यागपूर्वकं नामस्मरणं भगवत्प्राप्त्ये सुलभोपायः अन्यथा सततानुस्मरण भगीरथ प्रयासैः ।

—नामापराध भाष्य

इस प्रकार दशनामापराधों को समझ कर उनका परित्याग कर भगवन्नाम स्मरण करने पर यथार्थतः शास्त्र में कहे

हुए सुख को सहज ही में देने वाला होता है। काम क्रोधादि त्याग पूर्वक नाम जप करने पर अनायास भगवत्प्राप्ति होती है। अन्यथा सततस्मरण रूप महाप्रयास करना अनिवार्य है। जैसे पथ्य पालन करते हुए औषध खाने पर रोग सद्यः नष्ट होता है अन्यथा बहुत दिनों तक औषध खाने पर भी कुपथ्य करने वालों का रोग समूल नष्ट नहीं होता, और निरन्तर दवा खाने की आवश्यकता बनी ही रहती है वैसे ही यहाँ भी समझ लेना चाहिये। नामापराधी तीन प्रकार के होते हैं—

(१) नामापराध का स्वरूप न समझकर अज्ञानता वश अपराध करने वाले। ऐसे भक्तों को अपनी त्रुटि मालूम होने पर शीघ्र ही दैन्यता पूर्वक नाम जपते हुए अपराधों को क्षमा मांगने पर अपराधमुक्त होते देर नहीं लगती।

(२) नामापराधों को जानते हैं, उनसे बचते हैं, फिर भी मानव स्वभाववश प्रमाद से कोई अपराध बन पड़ा। ऐसे भक्त भी अपने अपराध का ज्ञान होने पर भगवन्नाम स्मरण करते हुए शुद्ध अन्तःकरण से दीन होकर प्रभु से क्षमा माँगने पर पवित्र हो जाते हैं।

(३) जिन्हें नामापराधों का ज्ञान है फिर भी उनसे न बचकर हठात् पाप करते हैं और वह भी नाम के बल पर ऐसे पापियों का शुद्ध होना अत्यन्त कठिन है।

पथ्यापथ्य के ज्ञान रहित बालक का दोष माता की दृष्टि में नहीं खटकता। भूल से कुपथ्य कर लेने वाले पर भी

उतना क्रोध नहीं होता परन्तु जो हठ पूर्वक कुपथ्य करते हैं और मना करने पर और भी अकड़ते हैं उन पर माता भी क्रुद्ध होकर दवा देना छोड़ देती हैं। अन्त में उसका दयालु हृदय मानता नहीं है, उनका दुःख और अज्ञानता देखकर वह दवा देती भी है फिर भी वे जबतक कुपथ्य नहीं छोड़ते उस दवा का कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता। वैसे ही यहां भी समझना चाहिये। सर्व सुहृद नाम महाराज ऐसे हठी पापियों को भी अपनाते हैं, परन्तु वे अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते तबतक नामजप का प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता। ऐसे पापी पश्चात्ताप पूर्वक अपराधोंको त्याग कर लगन लगाकर अखण्ड नाम जपने पर ही शुद्ध हो सकते हैं। अन्यथा करोड़ों प्रयत्न निश्चय ही विफल हो जायँगे। इस बात को सभी शास्त्र और सन्तों ने एक स्वर से स्वीकारो है।

पथ्यसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषध निषेवणैः॥

जो पथ्य से रहता है उसको दवा का क्या काम! और जो कुपथ्य करता है उसको भी दवा का क्या काम, क्योंकि कुपथ्य वाले पर औषध कुछ भी प्रभाव नहीं डालता।

मैं जानी प्रभुपद रति नाहीं। सपनेहुँ नहिं विराग मनमाँहीं॥
जे रघुवीर चरण अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोग समत्यागे॥
वंचक भक्त कहाय राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
तिन्हमहँ प्रथम रेखजग मोरी। धिक्धर्मध्वज धंधक धोरी॥

कैसे देऊँ नाथहि खोरि।

कामलोलुप भ्रमत निशिदिन भक्ति परिहरि तोरि ।

भक्ति विराग ज्ञान साधन कहि बहु विधि डहँकत लोक फिरौं।

शिव सरवस सुखधाम नाम तव, बेंचि नरकप्रद उदर भरौं ॥

नहि साधु कहावत लगत शरम ।

बाना बड़े बड़े को पहिरयो, पाजिन के सब करत करम ॥

चुपड़ि बोलि-बोलि लोगन को. ठगनो सीख्यो परम धरम ।

इहाँ-उहाँ कारो मुख होइहै, दो दिन में खुल जाई भरम ॥

कथनी को बाजार लगायो, नहि जान्यों कछु सार मरम ।

आँखिन में अँधियारी छाई, लपटि गयो मन दाम चरम ॥

कर विचार तू नरम देह सों, या गन्दे सो कधी न रम ।

मत भूले जो कियो गरभ में, हुकुम देव को बड़ो गरम ॥

—श्रीकाष्टजिह्वा स्वामी

नामापराध करने वाले वास्तव में नामानुरागी नहीं परन्तु विषयानुरागी हैं, वे नाम की आड़ में आन्तरिक पापों को पालते हैं. ऐसे लोग "उघरहि अन्त न होहि निवाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू" दशा भोगते हैं। सच्चे नाम जापक तो सांसारिक पदार्थ चाहते ही नहीं हैं। उन्हें तो—

'खेती करे अनाज की, सहज घास भुस होय'

न्याय से भगवत्प्रेम के साथ-साथ सभी सुख सुलभ हो जाते हैं इसलिये कहा है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकामरुदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

(भाग० २ । ३ । १०)

निष्काम भक्त--सकाम भक्त और मोक्षकाम भक्तों को तीव्र भक्तियोग द्वारा परम पुरुष प्रभु का स्मरण करना चाहिए। जैसे अन्न भूख मिटाने के साथ-साथ बल-बीर्य और आयु बढ़ाता है वैसे ही भगवन्नाम पाप मिटाते हुए प्रेम-भक्ति-ज्ञान-वैराग्य और सभी सत्यसुख सुलभ कर देता है, भगवान् की प्रतिज्ञा है कि—

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानिहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

(गीता, ६ । ३०--३१)

'अत्यन्त दुराचारी भी अनन्यता पूर्वक मेरा भजन करता है उसे साधु ही समझो, क्योंकि वह शीघ्र ही शुद्ध धर्मात्मा हो जाता है और नित्य परमशान्ति पाता है, हे कौन्तेय ! तू प्रतिज्ञा करले कि मेरे भक्तों का पतन नहीं होता।' परन्तु वह भजन अनन्यता पूर्वक पापों का परित्याग करते हुए होना चाहिये क्योंकि प्रभु ने आगे चलकर स्पष्ट समझा दिया है—

एतै र्विमुक्तः कौन्तेय! तमोद्वारै स्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परांगतिम् ॥

(गीता, १६ । २२)

'इन तमोद्वारभूत काम क्रोध-लोभ तीनों का त्यागकर जो मनुष्य आत्मकल्याण स्वरूप मेरी साधना करता है वह परमगति पाता है ।' अजामिल ने भी यमपाश से मुक्त होनेपर—

ममाहमिति देहादौ हित्वा मिथ्याऽर्थ धीर्मतिम् ।
धास्येमनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥
इति जात सुनिर्वेदः क्षणसंगेन साधुषु ।
गंगाद्वार मुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥

(भाग० ६ । २ । ३८-३९)

'देहादिक का अहंकार और ममता, झूठे धन की लालच छोड़कर भगवान् में मन लगाके उनके नामकीर्तनादि द्वारा मैं शुद्ध बनूँगा, ऐसी दृढ़ धारणा करके क्षणमात्र के सत्संग से परम वैराग्यवान् बनकर समस्त मोह बन्धनों से मुक्त होकर 'गंगाद्वार' चला गया ।' वहीं भजन करके भगवल्लोक प्राप्त किया था । अतएव पापों को छोड़कर भगवन्नाम जप करना ही समस्त शास्त्रों का एक मत है और यही उद्धार का प्रशस्त मार्ग है । सनत्कुमार कहते हैं—

त्वमपि भगवन्नाम स्मरणं कुरु तेन वै ।
अपराध विनिर्मुक्त नाम्नि यत्नं समाचर ।

'हे नारदजी ! आप भी अपराधों का परित्यागकर यत्न पूर्वक भगवन्नाम का स्मरण करिये ।' सनत्कुमार ऋषि का वचन सुनकर श्रीना[illegible]जी बोले—

सनत्कुमार प्रिय साहसानां विवेक वैराग्य विवर्जितानाम् ।
देह प्रियार्थात्म परायणानां मुक्तापराधात् भवन्तिनो कथम् ॥

'हे सनत्कुमार ! जिन्हें पाप प्रिय हैं ऐसे सहसा अपराध करने वाले, ज्ञान वैराग्य रहित, देह-स्त्री-पुत्र-घर और परिवार में आसक्त हम सब प्राणी उनसे मुक्त कैसे होसकते हैं ।' अर्थात् ये अपराध ऐसे सूक्ष्म हैं कि एक न एक अपराध हो जाना स्वाभाविक है ऐसी अवस्था में सर्वसुहृद नामके "अपराधात्पतत्यधः" से कैसे बच सकते हैं ? यह बात कृपया समझाने का कष्ट करें । उनका वचन सुनकर श्रीसनत्कुमार बोले—

जाते नामापराधे तु प्रमादेन कथंचन ।
सदा संकीर्तयन्नाम तदेक शरणाभवेत् ।
नामापराध युक्तानां नामान्येव हरत्यघम् ।
अविश्रान्त प्रयुक्तानि तान्येवार्थ कराणि च ॥

यदि अज्ञतावश प्रमाद से कोई नामापराध होजाय तो उसी नाम महाराज के अनन्यशरण होकर सर्वदा नाम संकीर्तन करे । नामापराधियों का पाप नामसंकीर्तन ही नष्ट करता है । वह नामसंकीर्तन निरन्तर होना चाहिये । वही समस्त मनोरथ सिद्ध करता है ।

'अविश्रान्त प्रयुक्तानि नैरन्तर्येण वाचोच्चार्यमाणानि, मनसा स्मर्यमाणानि श्रोत्राच्छ्रूमाणानीति त्रिविधा नामावलंविनः ।' (नामापराध भाष्य) अर्थात् अविश्रान्त माने वचन